इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
प्रबंध अध्ययन विद्यापीठ

बी.सी.ओ.सी.-132

व्यावसायिक संगठन और प्रबंध

खंड

2

व्यावसायिक उद्यम

इकाई 5
व्यावसायिक संगठन के रूप-I 5

इकाई 6
व्यावसायिक संगठन के रूप-II 36

इकाई 7
सार्वजनिक उद्यम 48

इकाई 8
अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय : बहुराष्ट्रीय निगम 72

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

कार्यक्रम डिजाइन समिति – बी.कॉम (सी.बी.सी.एस.)

प्रो. मधु त्यागी
निदेशक, एस.ओ.एम.एस, इग्नू

प्रो. आर.पी. हुडा
पूर्व कुलपति, एम.डी. विश्वविद्यालय, रोहतक

प्रो. बी.आर. अनंथन
पूर्व कुलपति, रानी चेन्नम्मां विश्वविद्यालय, बेलगाँव, कर्नाटक

प्रो. आई. वी. त्रिवेदी
पूर्व कुलपति, एम.एल. सुखादिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्रो. पुरुषोत्तम राव (सेवानिवृत्त)
वाणिज्य संकाय
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

प्रो. डी.पी.एस. वर्मा (सेवानिवृत्त)
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. के.वी. भानुमूर्ति (सेवानिवृत्त)
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. कविता शर्मा
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. खुर्शीद अहमद बट
डीन, वाणिज्य एवं प्रबंधन संकाय,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

प्रो. देवब्रत मित्रा
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
उत्तर बंगाल विश्वविद्यालय,दार्जिलिंग

प्रो. आर.के. ग्रोवर (सेवानि.)
प्रबंध अध्ययन विद्यापीठ, इग्नू

संकाय सदस्य
एस.ओ.एम.एस. इग्नू

प्रो. एन.वी. नरसिम्हम
प्रो. नवल किशोर
प्रो. एम.एस.एस. राजू
डॉ. सुनील कुमार
डॉ. सुबोध केशरवानी
डॉ. रश्मि बंसल
डॉ. मधुलिका पी. सरकार
डॉ. अनुप्रिया पाण्डेय

पाठ्यक्रम डिजाइन समिति

प्रो. मधु त्यागी
निदेशक, एस.ओ.एम.एस, इग्नू

प्रो. डी.के. वैद (सेवानि.)
एन.सी.ई.आर.टी. दिल्ली

प्रो. भानु मूर्ति (सेवानि.)
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. ए.के. सिंह
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. विजय कुमार श्रोत्रिया
डिपार्टमेंट ऑफ कामर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. राजेन्द्र महेश्वरी (सेवानि.)
रामानुजम कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संकाय सदस्य
एस.ओ.एम.एस. इग्नू

प्रो. एन.वी. नरसिम्हम
प्रो. नवल किशोर
प्रो. एम.एस.एस. राजू
डॉ. सुनील कुमार
डॉ. सुबोध केशरवानी
डॉ. रश्मि बंसल
डॉ. मधुलिका पी. सरकार
डॉ. अनुप्रिया पाण्डेय

पाठ्यक्रम निर्माण दल

प्रो. नवल किशोर (इकाई 8)
व्यवसाय संगठनः ई.सी.ओ.-01
(प्रो. नवल किशोर द्वारा संशोधित इकाइयाँ 2,3 एवं 17)
प्रो. पी.के. घोष (सेनि.), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. नफीस बेग (सेनि.), ए.एम.यू. अलीगढ़ यू.पी.
डॉ. आर.एन. गोयल (सेनि.), देशबंधु कॉलेज,दिल्ली

प्रो. नवल किशोर
(संपादक एवं पाठ्यक्रम समन्वयक)

डॉ. सुबोध केशरवानी
(संपादक एवं पाठ्यक्रम समन्वयक)

अनुवाद

श्री के.के. खन्ना
ज़ाकिर हुसेन कॉलेज, दिल्ली
डॉ. रामनारायण गोयल
देशबंधु कॉलेज, दिल्ली

श्री बी.डी. जोशी, दिल्ली
श्री नूरनवी अब्बासी, दिल्ली
प्रो. नवल किशोर (इकाई 8)
एसओएमएम, इग्नू, दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री वाई. एन. शर्मा
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

श्री सुधीर कुमार
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

अगस्त, 2019

©इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2019

ISBN- 978-93-89499-24-7

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढ़ी, नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण विभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक : पी. स्क्वायर सॉल्यूशन्स, एच-25, साईट-बी, इण्डस्ट्रीयल एरिया, मथुरा

खंड 2 व्यावसायिक उद्यम

आपने भारतीय व्यवसाय का आधार जिसमें व्यवसाय की भूमिका, प्रौद्योगिकी नवरचना, सामाजिक उत्तरदायित्व और व्यवसाय के उभरते हुए अवसर शामिल हैं, के बारे में खंड 1 में पढ़ा है। इस खंड 2 व्यावसायिक उद्यम में व्यावसायिक संगठन के स्वरूप, सार्वजनिक उद्यम, अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का महत्व, बहुराष्ट्रीय निगम की वर्तमान प्रवृत्ति, विशेषताएं और चुनौतियों का वर्णन किया गया है।

इकाई 5 में व्यावसायिक संगठन के विभिन्न रूप बताए गए हैं और प्रत्येक रूप के विशेषताओं, गुणों तथा सीमाओं का वर्णन किया गया है।

इकाई 6 में व्यावसायिक संगठन के सभी रूपों की तुलना की गई है और उन तत्वों का विश्लेषण किया गया है जिनका प्रस्तावित व्यवसाय के लिए चुने जाने वाले रूप पर प्रभाव पड़ता है।

इकाई 7 में सार्वजनिक उद्यमों की विशेषताएँ और उद्देश्य तथा विभागीय संगठन, लोक निगम और सरकारी कंपनी के विशेषताएँ एवं गुणों और दोषों का वर्णन किया गया है। इसमें संगठन के रूपों की तुलना भी की गई है।

इकाई 8 में अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की परिभाषा और महत्व, बहुराष्ट्रीय निगम की परिभाषा, बहुराष्ट्रीय निगम की विशेषताएँ, वर्तमान प्रवृत्ति, मुद्दे तथा विवाद और भारतीय परिप्रेक्ष्य के बारे में व्याख्या किया गया है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 व्यावसायिक संगठन के रूप-I

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 एकल स्वामित्व संगठन

5.2.1 प्रमुख विशेषताएँ

5.2.2 गुण व सीमाएँ

5.3 साझेदारी संगठन

5.3.1 प्रमुख विशेषताएँ

5.3.2 साझेदारों का वर्गीकरण

5.3.3 साझेदारी विलेख

5.3.4 गुण व सीमाएँ

5.3.5 संयुक्त हिन्दू परिवार फर्म

5.4 कंपनी संगठन

5.4.1 प्रमुख विशेषताएँ

5.4.2 कम्पनियों का वर्गीकरण

5.4.3 गुण व सीमाएँ

5.5 सहकारी संगठन

5.5.1 प्रमुख विशेषताएँ

5.5.2 सहकारी समितियों का वर्गीकरण

5.5.3 गुण व सीमाएँ

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.9 स्वपरख प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संगठनों का वर्णन कर सकें;
- प्रत्येक व्यावसायिक संगठन की विशेषताएँ बता सकें; तथा
- प्रत्येक व्यावसायिक संगठन के गुणों व सीमाओं का वर्णन कर सकें।

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा है कि लाभ कमाने की दृष्टि से किया गया कोई भी कार्य व्यवसाय कहलाता है, और ऐसा कार्य औद्योगिक कार्य हो सकता है अथवा व्यापारिक कार्य या बैंकिग, बीमा, परिवहन आदि जैसा सेवा कार्य हो सकता है। आपने यह भी पढ़ा है कि व्यवसाय को शुरू करने के लिए विभिन्न साधनों को एक साथ जुटाना और उन्हें व्यवस्थित

ढंग से कार्य पर लगाना व्यावसायिक संगठन कहलाता है। वह व्यक्ति जो व्यवसाय शुरू करता है, आवश्यक पूँजी जुटाता है तथा जोखिम वहन करता है, व्यवसाय का स्वामी कहलाता है। जब व्यवसाय छोटे पैमाने का होता है तो एक व्यक्ति भी आवश्यक पूँजी जुटा सकता है तथा जोखिम उठा सकता है। परन्तु जब यह बड़े पैमाने पर होता है, तो एक से अधिक व्यक्तियों का सहयोग होना आवश्यक हो सकता है। अस्तु, व्यवसाय का स्वामी एक व्यक्ति भी हो सकता है या व्यक्तियों का समूह भी। जब व्यवसाय का एक ही व्यक्ति स्वामी होता है तथा वह व्यक्ति ही उसे चलाता है तब यह एकल स्वामित्व संगठन कहलाता है। परन्तु जब व्यक्तियों का समूह इसका स्वामी होता है, तब यह साझेदारी फर्म अथवा कंपनी अथवा सहकारी समिति का रूप ले सकता है। इस इकाई में आप इन विभिन्न प्रकार के व्यवसाय संगठनों के लक्षण, वर्गीकरण, गुण व सीमाओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

चित्र 2.1 को देखिए। इस चित्र से आपको व्यवसाय के विभिन्न रूपों की जानकारी हो सकेगी।

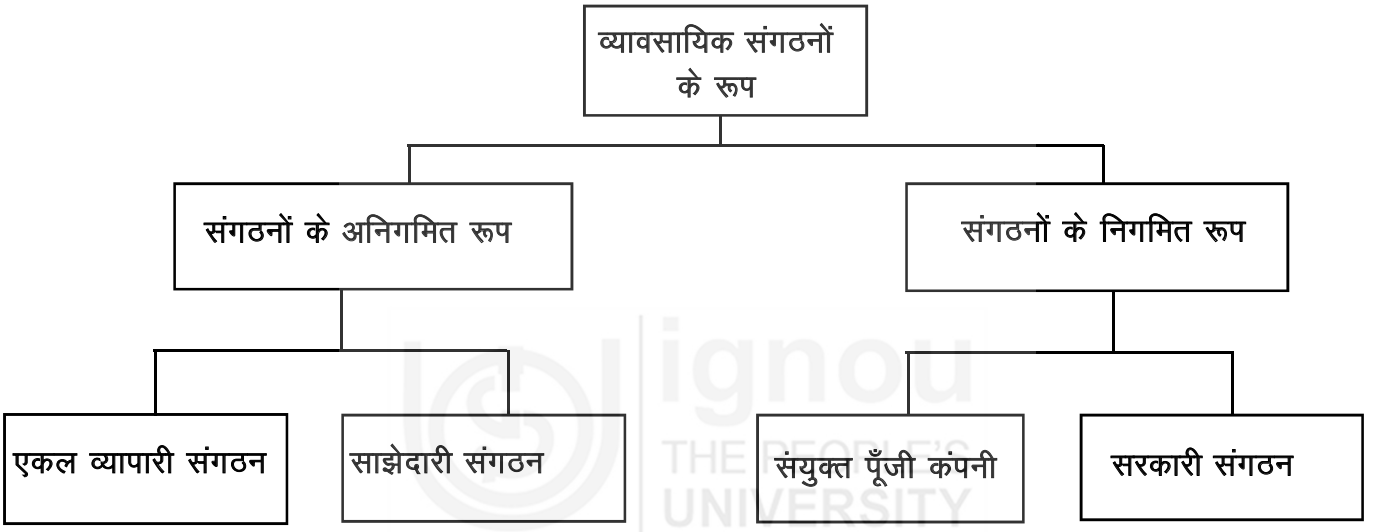

चित्र 5.1: व्यावसायिक संगठनों के विभिन्न रूप

5.2 एकल स्वामित्व संगठन

एकल व्यापारी संगठन, जिसे एकल स्वामित्व (sole proprietorship) भी कहा जाता है, सबसे प्राचीन संगठन है और आज भी यह छोटे पैमाने के व्यवसायों के लिए सबसे अधिक अपनाया जाने वाला रूप है। स्थापना की दृष्टि से यह सबसे सरल है। इसके लिए, व्यक्ति सर्वप्रथम निश्चय करता है कि उसे किस प्रकार का व्यवसाय करना है अैर वह उसके लिए आवश्यक पूँजी जुटा लेता है। अपनी बचत से, अथवा अपने मित्रों तथा संबंधियों के ऋण लेकर पूँजी जुटाई जा सकती है। अपने ही मकान के एक भाग में अथवा किराए पर लिए मकान में वह अपना कारोबार शुरू कर सकता है। प्रायः वह व्यक्ति स्वयं ही अपने कारोबार का प्रबंधन करता है। इसके लिए वह अपने परिवार के सदस्यों की सहायता भी ले सकता है अथवा कुछ लोगों को नौकरी पर रख सकता है। कारोबार चलाने के लिए वह अन्य व्यक्तियों से सलाह ले सकता है, परन्तु उसका अपना निर्णय ही अंतिम निर्णय होता है। इस प्रकार एकल व्यापारी फर्म के मामलों में पूर्ण नियंत्रण रखता है। व्यवसाय में अर्जित कुल मुनाफे पर उसका अधिकार रहता है, इसीलिए यदि उसे घाटा हो जाए तो स्वाभाविक है कि उसका पूर्ण भार उसी को सहन करता पड़ता है।

अस्तु, अब हम एकल व्यापारी संगठन की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं – ''यह एक व्यक्ति का कारोबार होता है जिसमें वह अपनी पूँजी, कौशल तथा बुद्धिमत्ता से स्वतन्त्रतापूर्वक स्वयं ही उत्पादन करता है, उसके समस्त लाभ को भोगने का अधिकारी अकेले ही होता है तथा स्वामित्व के पूर्ण जोखिम को वहन करता है।'' जे. एल. हैन्सन ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है, ''यह एक प्रकार के कारोबार की इकाई है जिसमें एक ही व्यक्ति पूर्ण रूप से पूँजी जुटाने, उद्यम का जोखिम उठाने तथा कारोबार का प्रबंध करने के लिए उत्तरदायी होता है।'' व्यावसायिक संगठन के इस रूप में स्वामी और फर्म में कोई अंतर नहीं रखा जाता है। इसी प्रकार, उसी व्यक्ति के हाथों में कारोबार का प्रबंध भी रहता है।

5.2.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम एकल व्यापारी संगठन की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार गिना सकते हैं :

1) **एक ही व्यक्ति का स्वामित्व :** इस प्रकार के उद्यम पर एक ही व्यक्ति का स्वामित्व होता है। उसमें सहयोगी अथवा साझेदार नहीं होते। वह अपनी पूँजी लगाता है अथवा अपने मित्रों व संबंधियों से ऋण लेकर पूँजी जुटाता है।

2) **स्वामित्व तथा प्रबंधन में पृथकता नहीं :** स्वामी स्वयं ही व्यवसाय का प्रबंधन करता है। अतः स्वामित्व तथा प्रबंधन की पृथकता, जो बड़े व्यवसायों में प्रायः देखी जाती है, इस प्रकार के व्यवसाय में दिखाई नहीं देती। चूँकि स्वामी ही व्यवसाय का प्रबंधन करता है। अतः वह व्यवसाय के संचालन का बहुत अच्छी तरह देखरेख व नियंत्रण करता है।

3) **कोई पृथक अस्तित्व नहीं :** व्यावसायिक उद्यम का स्वामी से भिन्न अस्तित्व नहीं रहता। स्वामी एवं व्यावसायिक उद्यम एक ही होते हैं।

4) **समस्त लाभ स्वामी का ही होता है :** चूँकि साझेदार नहीं होते, अतः समस्त लाभ एकल स्वामी को ही प्राप्त होता है।

5) **जोखिम अकेले स्वामी की ही होती है :** व्यवसाय में होने वाली सम्पूर्ण हानि स्वामी को ही अकेले वहन करनी होती है।

6) **असीमित दायित्व :** स्वामी का दायित्व असीमित होता है। इसका अर्थ यह है कि हानि होने पर स्वामी की निजी सम्पत्ति से भी व्यावसायिक देयता व ऋणों का शोधन करना पड़ सकता है।

7) **कम कानूनी औपचारिकताएँ :** एकल व्यावसायिक इकाई स्थापित करने के लिए कम कानूनी औपचारिकताएँ निभानी पड़ती हैं। हाँ, किसी विशेष प्रकार का व्यवसाय स्थापित करने पर कुछ कानूनी प्रतिबंध अवश्य हैं। उदाहरण के लिए, एक अकेला व्यक्ति बैंक अथवा बीमा कंपनी की स्थापना नहीं कर सकता। परन्तु वह चाट की दुकान या साईकिल की दुकान बिना अधिक कानूनी औपचारिकताओं के शुरू कर सकता है। फिर भी कुछ दशाओं में उसे लाइसेंस लेना पड़ जाता है। उदाहरण के लिए, रेस्तरां चलाने के लिए नगर निगम से लाइसेंस लेना आवश्यक हो जाता है।

5.2.2 गुण व सीमाएँ

एकल व्यापारिक उपक्रम की प्रमुख विशेषताओं का आपको ज्ञान हो चुका है। इन विशेषताओं के संदर्भ में, संगठन के इस रूप में निम्नलिखित गुण व सीमाएँ पाई जाती हैं।

गुण

1) **सुगम स्थापना :** संगठन के इस रूप की स्थापना में कानूनी औपचारिकताएँ नहीं

निभानी पड़ती। अतः इसकी स्थापना सरल होती है। स्थापना की प्रक्रिया में किया जाने वाला व्यय भी नगण्य होता है।

2) **प्रत्यक्ष प्रेरणा :** जैसा कि आप जानते हैं, व्यवसाय के सभी फायदे और लाभ एकल स्वामी के ही जेब में जाते हैं। इससे स्वामी को अधिक परिश्रम करने और व्यवसाय को विकसित करने की प्रेरणा मिलती है, जिससे लाभ दिन-प्रति-दिन बढ़ता जाता है। अस्तु, व्यवसाय में उसकी लगन पूरी तथा निर्बाध होती है।

3) **पूर्ण नियंत्रण :** स्वामी अपने व्यवसाय का सर्वेसर्वा होता है। वह सम्पूर्ण व्यवसाय का प्रबंधन करता है, समस्त निर्णय स्वयं ही लेता है। अन्य शब्दों में व्यवसाय के कार्य-संचालन पर स्वामी का पूर्ण नियंत्रण रहता है।

4) **शीघ्र निर्णय :** निर्णय लेने के लिए स्वामी को अन्य व्यक्तियों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, क्योंकि कोई साझेदार नहीं होते, इसीलिए किसी दूसरे से सलाह लेने की उसे आवश्यकता नही पड़ती। इससे वह अपने व्यवसाय से संबंधित अनेक विषयों में शीघ्र निर्णय ले सकता है।

5) **कारोबार में लचीलापन :** छोटा संगठन होने के नाते, परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन करना सरल होता है। बड़े संगठनों में परिवर्तन करना कठिन हो जाता है।

6) **गोपनीयता :** चूँकि सम्पूर्ण व्यवसाय स्वामी द्वारा ही संचालित किया जाता है, इसीलिए व्यवसाय की गोपनीय बातों की केवल उसको ही जानकारी रहती है। उसे अपने लेखों को प्रकाशित नहीं करना पड़ता। अतः इस प्रकार के संगठन में पूरी गोपनीयता रखी जा सकती है।

7) **व्यक्तिगत संपर्क** : चूँकि स्वामी व्यवसाय से संबंधित सभी कार्यों का स्वयं ही संचालन करता है, इसलिए उसे अपने ग्राहकों से व्यक्तिगत सम्पर्क बनाए रखना सरल हो जाता है। वह उनकी रुचि, पसंद और नापसंद को सरलता से जान सकता है और अपना कार्य तथा व्यवहार उन्हीं के अनुरूप ढाल सकता है। इसी प्रकार ऐसे संगठन में यदि कुछ कर्मचारी भी हों तो वे अपने स्वामी के सीधे संपर्क में रहते हैं। अतः स्वामी को अपने कर्मचारियों से मधुर संबंध बनाए रखने के पर्याप्त अवसर मिलते हैं।

8) **व्यवसाय के समापन में आसानी :** सह-स्वामियों तथा साझेदारों के न होने से मतभेद का प्रश्न नहीं उठ पाता और व्यवसाय का सरलता से समापन किया जा सकता है। स्वामी को व्यवसाय से मुक्त होने की स्वतंत्रता रहती है। वह किसी भी समय अपने व्यवसाय को छोड़ सकता है या जब भी वह चाहे उसे बेच सकता है। स्थापना तथा समापन की सरलता के कारण एकल स्वामित्व रूप अपनाया जाता है, क्योंकि इससे किसी व्यवसाय के चलने या ठप्प हो जाने की परख हो सकती है।

सीमाएँ

1) **सीमित साधन :** एक अकेले व्यक्ति के पास पूँजी तथा अन्य साधन सदा सीमित मात्रा में ही होते हैं। एकल व्यापारी को तो मुख्य रूप से अपनी कमाई और पूँजी पर ही निर्भर रहना होता है अथवा आवश्यकता पड़ने पर अधिक से अधिक वह अपने मित्रों तथा संबंधियों से ऋण ले सकता है। इस प्रकार स्वामी की पूँजी जुटाने की क्षमता सीमित होती है। यही कारण है कि बड़े पैमाने पर किसी व्यवसाय के विस्तार की योजना को सरलता से पूरा करना दुष्कर होता है।

2) **सीमित प्रबंध-क्षमता :** आधुनिक व्यवसाय में उत्पादन, वित्त, विपणन आदि विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान व कौशल की आवश्यकता होती है। इन सभी क्षेत्रों का विशिष्ट ज्ञान एक ही व्यक्ति के पास होना संभव नहीं है। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उसके निर्णय संतुलित ही होंगे।

3) **बड़े पैमाने पर कारोबार के लिए उपयुक्त नहीं :** एकल व्यापारी के पास साधन सीमित होते हैं। अतः यह छोटे पैमाने पर चलाए जाने वाले व्यवसायों के लिए ही उपयुक्त होता है, बड़े पैमाने के लिए नहीं।

4) **असीमित दायित्व :** आप जानते हैं कि स्वामी का दायित्व असीमित होता है। हानि की दशा में उसकी निजी सम्पत्ति तथा वस्तुएँ भी फर्म की देयता का शोधन करने में लगाई जा सकती हैं। अतः वह बड़ी जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं हो सकता और अपने व्यवसाय का विस्तार करने के लिए उत्साह नहीं जुटा पाता है।

5) **कम स्थायित्व :** व्यवसाय की निरंतरता तथा स्थायित्व केवल एक ही व्यक्ति पर निर्भर होता है। जब उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो फर्म को बंद करने की नौबत आ सकती है।

6) **कोई रोकथाम और नियंत्रण नहीं :** एकल व्यापारी चूँकि अपनी फर्म का बादशाह होता है इसलिए कोई भी बाहरी व्यक्ति उसके कार्य व व्यवहार पर उँगली नहीं उठा सकता। एकल व्यापारी पर कोई रोकथाम और नियंत्रण नहीं होता।

7) **बड़े पैमाने पर व्यवसाय के लाभ की संभावना :** एकल व्यापारी बहुधा छोटे पैमाने पर ही अपना कारोबार चलाता है, अतः वह बड़े पैमाने पर उत्पादन अथवा क्रय-विक्रय से होने वाले लाभ से वंचित रह जाता है। इससे कारोबार की लागत के अधिक होने की संभावना बनी रहती है।

बोध प्रश्न 1

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   i) एकल व्यापारी का दायित्व ..... होता है।

   ii) एकल व्यापारी को दायित्व ..... की जेब में जाता है।

   iii) एकल व्यापार संगठन तभी उपयुक्त होता है जब व्यवसाय का आकार .... होता है।

   iv) एकल व्यापार संगठन में स्वामियों की संख्या ..... होती है।

   v) एकल व्यापार संगठन में निर्णय लेना केवल ..... के हाथ में होता है।

2) बताएं की निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत।

   i) एकल स्वामित्व बड़े पैमाने के व्यवसायों के लिए सर्वथा ..... उपयुक्त होता है।

   ii) एकल व्यापार संगठन में स्वामी व्यापारिक फर्म से भिन्न ..... नहीं होता है।

   iii) एकल व्यापारी के स्वामी की पूँजी जुटाने की क्षमता असीमित ..... होती है।

iv) हानि की स्थिति में एकल व्यापारी को व्यावसायिक दायित्व ..... अपनी निजी सम्पत्ति से भी चुकाने पड़ते हैं।

v) एकल स्वामित्व व्यवसाय पर बहुत से व्यक्तियों का स्वामित्व ..... होता है परन्तु प्रबंधन एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाता है।

5.3 साझेदारी संगठन

आप पढ़ चुके हैं कि एकल व्यापार संगठनों के सीमित वित्तीय साधन, सीमित प्रबंध-कौशल एवं योग्यता तथा असीमित दायित्व होते हैं। यदि व्यापार का विस्तार करना हो तो अधिक पूँजी तथा अधिक प्रबंध कौशल की आवश्यकता होती है। साथ ही जोखिम भी बढ़ जाती है। एकल व्यापारी इन सभी शर्तों को पूरा करने में असमर्थ हो सकता है। एक व्यक्ति के पास प्रबंध-कौशल तो नहीं, परंतु पूँजी हो सकती है। अच्छा प्रबंधक हो सकता है। परंतु वह पर्याप्त पूँजी नहीं जुटा पाता। ऐसी स्थिति में दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति मिल जाते हैं और अपनी पूँजी एवं कौशल को मिलाकर व्यवसाय को संगठित करते हैं। इस प्रकार का व्यावसायिक संगठन साझेदारी संगठन कहलाता है। एकल स्वामित्व संगठन की सीमाओं तथा असफलताओं के परिणामस्वरूप इसका विकास हो पाया है।

जे. एल. हैन्सन ने इस की परिभाषा इस प्रकार दी है – ''साझेदारी व्यावसायिक संगठन का एक ऐसा रूप है जिसमें दो अथवा दो से अधिक और अधिक से अधिक 20 व्यक्ति किसी कारोबार को करने के लिए एक साथ मिल जाते हैं।''

भारतीय भागीदारी अधिनियम 1932 के अंतर्गत दी गई परिभाषा इस प्रकार है – ''साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच का संबंध है जो सभी के द्वारा संचालित अथवा सभी की ओर से उनमें से किसी एक के द्वारा संचालित कारोबार का लाभ बाँटने के लिए सहमत होते हैं।''

यू.एस.ए. के यूनीफार्म पार्टनरशिप ऐक्ट के अनुसार ''साझेदारी दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के बीच का साहचर्य है जो मुनाफा बाँटने के लिए किसी कारोबार को सहस्वामी के रूप में चलाते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि साझेदारी दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के साहचर्य है जो सभी के द्वारा संचालित अथवा सभी की ओर से किसी एक के द्वारा संचालित कारोबार के लाभ को बाँटने के लिए आपस में मिले हुए होते हैं।

साझेदारी व्यवसाय के स्वामी व्यक्तिगत रूप से साझेदार कहलाते हैं तथा सामूहिक रूप से फर्म अथवा साझेदारी फर्म उन्हें आपस में हुए करार के अनुसार वे अपने हिस्से की पूँजी लगाते हैं तथा कारोबार को चलाने का दायित्व निभाते हैं। परंतु, कुछ स्थितियों में एक ही साझेदार सम्पूर्ण पूँजी अथवा उसका बहुत बड़ा भाग लगाता है और अन्य साझेदार चाहे कुछ पूँजी लगाएं या नहीं परंतु वे तकनीकी व प्रबंधकीय कौशल जुटाते हैं। आम तौर पर ये सभी शर्तें साझेदारी करार अथवा करारनामें में उल्लिखित रहती हैं।

5.3.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम साझेदारी संगठन की प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार सूचीबद्ध कर सकते हैं :

1) **एक से अधिक व्यक्ति :** साझेदारी फर्म स्थापित करने के लिए कम से कम दो व्यक्तियों का होना आवश्यक होता है। व्यक्तियों की संख्या के संबंध में अधिकतम सीमा 50 रखी गयी है।

2) **संविदात्मक संबंध :** साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच हुए समझौते से उत्पन्न होती है जिन्हें साझेदार कहा जाता है दूसरे शब्दों में कोई व्यक्ति करार के आधार पर ही साझेदार बन सकता है। यह करार मौखिक, लिखित अथवा निर्हित हो सकता है।

3) **लाभ का बंटवारा :** साझेदारों के बीच कारोबार के लाभ और हानि का बँटवारा करने के लिए भी करार आवश्यक होता है। यह साझेदारी के प्रमुख तत्वों में से एक है यदि दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति एक सम्पत्ति के सह-स्वामी हैं और उसकी आय आपस में बांट लेते हैं तो उनके बीच का यह संबंध साझेदारी नहीं कहलायेगा।

4) **कारोबार का विद्यमान होना:** साझेदारों के बीच किए जाने वाले करार का उद्देश्य होता हैं विधिपूर्ण कारोबार की स्थापना करना और उससे होने वाले लाभ को बाँट लेना। यदि उद्देश्य कारोबार के अलावा और कुछ है तो यह साझेदारी नहीं कहलायेगा। उदाहरण के लिए, यदि उद्देश्य कोई धर्मार्थ कार्य करना है तो वह साझेदारी नहीं कहलायेगा।

5) **मालिक-एजेंट संबंध :** फर्म का कारोबार सभी के द्वारा अथवा सबकी ओर से एक अथवा कुछ के द्वारा चलाया जा सकता है। फर्म के कार्यकलाप में प्रत्येक साझेदार को भाग लेने का अधिकार होता है। फर्म के कारोबार के संबंध में अन्य पक्षकारों के साथ व्यवहार करते समय प्रत्येक साझेदार को फर्म तथा अन्य साझेदारों को प्रतिनिधित्व करने का अधिकार होता है। फर्म के नाम में तथा साधारण व्यवसाय के दौरान किए गए उसके कार्य सभी साझेदारों के लिए बाध्यकर होते हैं। इस अर्थ में साझेदार अन्य साझेदारों तथा फर्म का एजेंट माना जाता है।

6) **असीमित दायित्व :** व्यवसाय संबंधी ऋण के प्रति प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है। इसका अर्थ यह है कि जब फर्म के पास अपने देयताओं का शोधन करने के लिए पर्याप्त परिसम्पत्ति नहीं होती तो साझेदारों को अपनी निजी परिसम्पत्ति से ये भुगतान करने होते हैं। ऋणदाता समस्त ऋण की रकम केवल एक साझेदार से भी वसूल कर सकते हैं। अस्तु सभी साझेदार संयुक्त तथा पृथकतः व्यवसाय के सम्पूर्ण ऋण तथा देयताओं के लिए उत्तरदायी होते हैं।

7) **सदाशयता तथा ईमानदारी :** साझेदारी करार साझेदारों के बीच सदाशयता पर आधारित होता है। साझेदार ईमानदार होने चाहिए तथा उन्हें एक दूसरे पर विश्वास करना चाहिए। उन्हें व्यवसाय के बारे में प्रत्येक जानकारी देनी चाहिए तथा एक दूसरे को फर्म के लेखों का सही चित्र प्रस्तुत करना चाहिए।

8) **शेयरों के हस्तांतरण पर रोक :** कोई भी साझेदार सभी साझेदारों की स्वीकृति लिए बिना बाहर के किसी व्यक्ति को अपने शेयरों का हस्तांतरण नहीं कर सकता।

5.3.2 साझेदारों का वर्गीकरण

आप पढ़ सकते हैं कि फर्म के कार्य-संचालन में भिन्न-भिन्न साझेदारों की भिन्न-भिन्न भूमिका होती है। एक साझेदार अधिक पूँजी लगा सकता है, जबकि दूसरा उसके प्रबंध में अधिक समय दे सकता है। उनकी जो भी भूमिका होती है उसके आधार पर हम साझेदारों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण कर सकते हैं। साझेदारों के वर्गीकरण के लिए चित्र 5.2 देखिए।

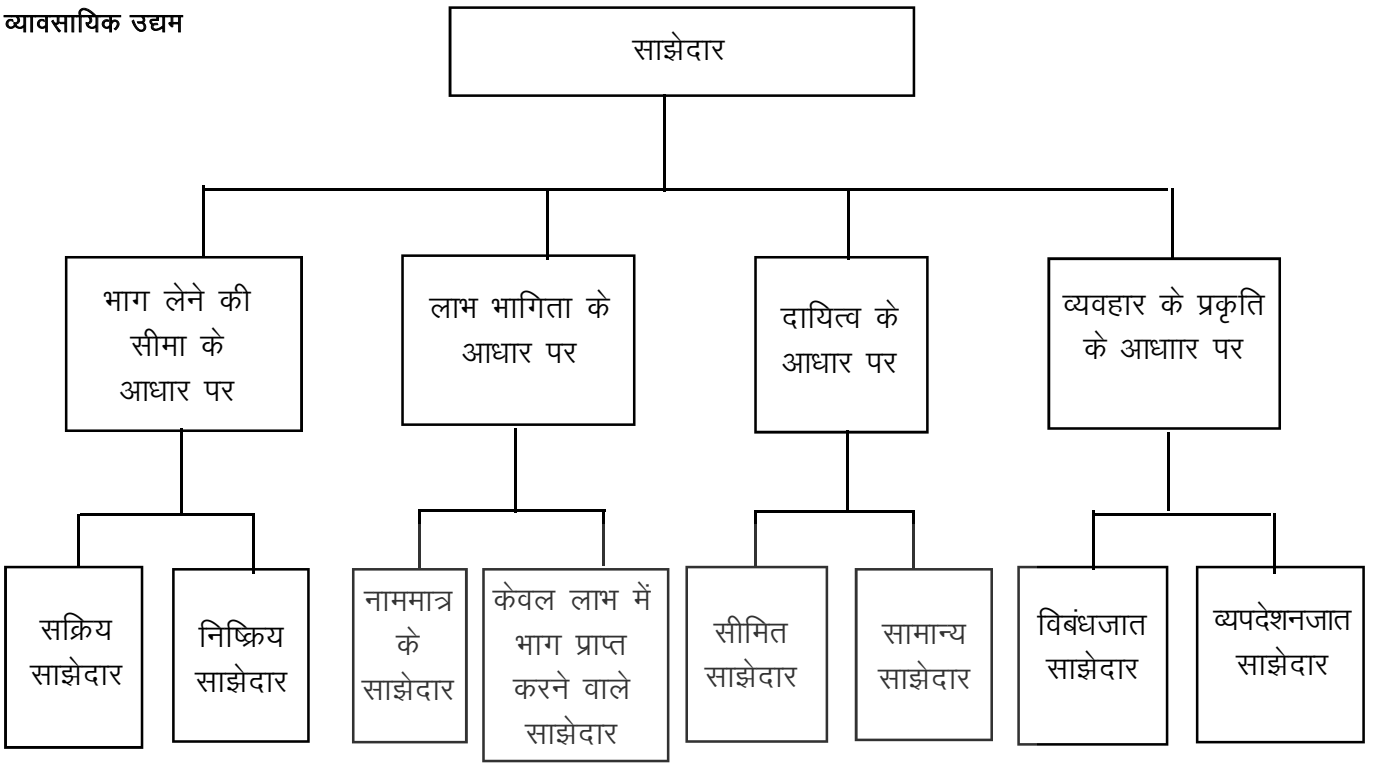

चित्र 5.2 : साझेदारों का वर्गीकरण

व्यवसाय के संचालन में भाग लेने की मात्रा के आधार पर साझेदारों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। (क) सक्रिय और (ख) निष्क्रिय अथवा सुप्त साझेदार।

क) **सक्रिय (Active) साझेदार :** यदि साझेदार फर्म प्रबंध में सक्रिय रूप से भाग लेता है तो वह सक्रिय साझेदार कहलाता है। उसे 'क्रियाशील साझेदार' भी कहा जाता है।

ख) **निष्क्रिय सुप्त (Dormant/Sleeping) साझेदार :** यदि साझेदार फर्म के कार्य संचालन में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता है तो उसे निष्क्रिय साझेदार कहा जाता है। निष्क्रिय साझेदार फर्म में केवल पूँजी लगाता है। वह फर्म के कार्य संचालन में भाग नहीं लेता। इस प्रकार के साझेदार को सुप्त साझेदार भी कहा जाता है।

लाभ में भाग प्राप्त करने के आधार पर : साझेदारों को (क) नाममात्र के साझेदार तथा (ख) लाभ में भाग पाने वाले साझेदार के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

नाममात्र के (Nominal) साझेदार : वह साझेदार जो फर्म को केवल अपना नाम ही देता है, नाममात्र का साझेदार कहलाता है। वह न तो पूँजी लगाता है और न ही दिन-प्रतिदिन के कार्यों तथा प्रबंधन में भाग लेता है। इस प्रकार के साझेदारों को फर्म के लाभ में भाग नहीं मिलता। परन्तु वे अन्य पक्षकारों के प्रति फर्म के कार्यो के लिए उत्तरदायी ठहराये जाते हैं।

लाभ में भाग पाने वाले साझेदार (Partners in Profits) : वह साझेदार जो फर्म के लाभ में तो भाग पाता है परंतु हानि होने की दशा में उत्तरदायी नहीं ठहराया जाता, लाभ में भाग पाने वाले साझेदार कहलाता है। नियमानुसार उसे फर्म के प्रबंधन में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता। यह बात उस अवयस्क व्यक्ति पर लागू होती है जिसे फर्म के लाभ में भाग प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।

व्यवहार तथा आचरण के आधार पर : साझेदारों का वर्गीकरण (क) विबंधजात साझेदार और (ख) व्यपदेशनजात साझेदार के रूप में भी किया जा सकता है।

विबंधजात साझेदार (Partner by estoppel) : कोई व्यक्ति जब जनता के सामने इस प्रकार व्यवहार करता है कि वह यह समझने लगती है कि वह व्यक्ति फर्म का साझेदार है तो वह विबंधजात साझेदार कहलाता है। ऐसे व्यक्ति को फर्म के लाभ में भाग नहीं मिलता परन्तु वह फर्म दायित्वों के प्रति उत्तरदायी ठहराया जाता है।

व्यपदेशनजात साझेदार (Partner by Holding out) : यदि फर्म का साझेदार यह प्रदर्शित करता है कि अमुक व्यक्ति भी इस फर्म में साझेदार है और जब उस व्यक्ति को यह पता चलता है तब भी वह इस बात से इनकार नहीं करता अर्थात् यह नहीं कहता कि वह फर्म में साझेदार नहीं है, तो इस प्रकार का व्यक्ति व्यपदेशनजात साझेदार कहलाता है। इस प्रकार के साझेदार को फर्म के लाभ में भाग नहीं मिलता परन्तु वह फर्म के दायित्वों के प्रति उत्तरदायी होता है।

आपको इन दोनों प्रकार के साझेदारों के बीच अंतर को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। विबंधजात साझेदार वह होता है जो अपने व्यवहार तथा आचरण के अन्य व्यक्तियों के मस्तिष्क में यह विचार भर देता है कि वह फर्म का साझेदार है परन्तु व्यपदेशनजात साझेदार के लिए फर्म के अन्य साझेदार अन्य पक्षकारों से कहते हैं कि अमुक व्यक्ति भी फर्म का साझेदार है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है और वह व्यक्ति इस बात का खंडन भी नहीं करता।

दायित्व के आधार पर भी साझेदारों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है :

(क) सीमित साझेदार (ख) सामान्य साझेदार

सीमित (Limited) साझेदार : इस प्रकार के साझेदार के दायित्व की सीमा उसके द्वारा फर्म में लगाई हुई पूँजी तक ही होती है। वह फर्म के प्रबंधन में भाग लेने का अधिकारी नहीं होता, परन्तु अन्य सामान्य साझेदारों को परामर्श देने का अधिकार रखता है। उसके कार्य फर्म के लिए बाध्यकर नहीं होते। अपनी सूचना के लिए उसे फर्म की पुस्तकों को देखने का अधिकार होता है। इन साझेदारों को 'विशेष साझेदार' का नाम भी दिया जाता है।

सामान्य (General) साझेदार : यह असीमित साझेदार के नाम से भी जाना जाता है। उसका दायित्व असीमित होता है, और वह व्यवसाय के प्रबंधन में भाग लेने का भी अधिकारी है। सीमित साझेदार के अलावा अन्य सभी साझेदार भी सामान्य साझेदार माने जाते हैं।

जैसाकि आप जानते हैं कि साझेदारी का दायित्व असीमित होता है। केवल सीमित साझेदारी के व्यवसाय संगठन में ही इस प्रकार के सीमित साझेदार पाये जाते हैं जो कुछ यूरोपीय देशों तथा संयुक्त राज्य अमेरीका में होता है।

5.3.3 साझेदारी विलेख (Partnership Deed)

आप जानते हैं कि साझेदारी की स्थापना करार द्वारा की जाती है। इस प्रकार का करार मौलिक अथवा लिखित हो सकता है गलतफहमी तथा अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचने के लिए लिखित करार करना सदैव वांछनीय होता है। जब लिखित करार पर विधिवत स्टाम्प लगा दिया जाता है और उसका पंजीकरण भी करा लिया जाता है तब यह **साझेदारी विलेख** कहलाता है। पंजीकरण के पश्चात् साझेदारी को साझेदारी विलेख की एक प्रतिलिपि दे दी जाती है। एक साझेदारी (भागीदारी) विलेख में प्रायः निम्न बातें शामिल की जाती हैं :

1) फर्म का नाम

2) कारोबार की प्रकृति

3) साझेदारों के नाम

4) शहर तथा जगह का नाम जहां कारोबार किया जाना है

5) पूँजी की रकम, जो प्रत्येक साझेदार को लगानी होगी

6) प्रत्येक साझेदार का हानि-लाभ अनुपात

7) साझेदारों द्वारा किए गए ऋण और अग्रिम की राशि तथा उन पर दिए जाने वाले ब्याज की राशि

8) प्रत्येक साझेदार की आहरण की सीमा तथा उस पर लिए जाने वाले ब्याज की दर

9) पूँजी पर दिए जाने वाले ब्याज की दर

10) साझेदारों के कर्त्तव्य, अधिकार तथा दायित्व

11) सक्रिय साझेदार को यदि कुछ पारिश्रमिक दिया जाना हो तो उसकी राशि

12) लेखा पुस्तकों का रख-रखाव तथा लेखा परीक्षा की व्यवस्था

13) साझेदारी की विघटन की स्थिति में निपटान की विधि

14) साझेदार के प्रवेश, मृत्यु अथवा अवकाश ग्रहण करने के समय सुनाम (Goodwill) के मूल्यांकन की विधि

15) साझेदार के प्रवेश, मृत्यु अथवा अवकाश ग्रहण करने के समय परिसम्पत्तियों और देयताओं के पुनर्मूल्यांकन की विधि

16) साझेदार के अवकाश ग्रहण करने की विधि तथा अवकाश प्राप्त साझेदार अथवा मृत साझेदार को मिलने वाली रकम के भुगतान की विधि

17) साझेदारों के बीच विवाद की स्थिति में पंच-निर्णय

18) साझेदार के दिवालिया घोषित होने की स्थिति में की जाने वाली व्यवस्था

उपर्युक्त सूची में सभी बातें नहीं आ जातीं। यदि साझेदार चाहे तो अन्य कोई खंड भी भागीदारी विलेख में शामिल किया जा सकता है। वास्तव में भागीदारी अधिनियम में एक साझेदार के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की व्याख्या दी गई है। लेकिन साझेदारों के बीच करार होने पर ही अधिनियम के प्रावधान लागू होते हैं।

फर्म का पंजीकरण (Resigtration of the Firm) : भारतीय भागीदारी अधिनियम के अनुसार फर्म का पंजीकरण कराना अनिवार्य नहीं है। परंतु अपंजीकृत फर्म को कुछ सीमाओं का सामना करना पड़ता है। अतः फर्म को पंजीकृत कराना अच्छा होता है। पंजीकरण किसी भी समय कराया जा सकता है। फर्म को पंजीकृत कराने के लिए फर्म के बारे में पूर्ण विवरण लिखकर एक प्रार्थनापत्र को पंजीकरण की फीस के साथ रजिस्ट्रार के कार्यालय में भेजना होता है।

5.3.4 गुण व सीमाएँ

आपने साझेदारी की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली है। इस जानकारी से आपको इस प्रकार के संगठन के गुणों तथा सीमाओं को पहचानने में मदद मिलेगी, जिन्हें नीचे दिया जा रहा है :

1) **सुगम स्थापना** : किसी एकल स्वामित्व संगठन की तुलना में यद्यपि साझेदारी फर्म की स्थापना उतना सरल नहीं है, तथापि कंपनी की स्थापना की तुलना में यह कम कठिन है। साझेदारी आपस में कारोबार करने के लिए करार करते हैं और एक साझेदारी करार तैयार करके उस पर अपने हस्ताक्षर कर देते हैं। इसके पश्चात् साझेदारी फर्म के नियमन के लिए कोई जटिल सरकारी नियम आवश्यक नहीं रह जाते।

2) **अधिक पूँजी की उपलब्धता :** एकल स्वामित्व संगठन के विपरीत साझेदारी फर्म में दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति होते हैं। अतः साझेदारी फर्म एक ही व्यक्ति की पूँजी के सहारे नहीं चलती। साझेदारों के वित्तीय स्थिति के आधार पर फर्म की ऋण लेने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

3) **अधिक विविध कौशल तथा विशेषज्ञता :** अधिक स्वामियों के होने के कारण साझेदारी फर्म में निर्णय अधिक व्यक्तियों के विचार-विमर्श पर निर्भर होता है। एक आदर्श साझेदारी में साझेदार एक दूसरे के पूरक होते हैं। वे एक ही पृष्ठभूमि तथा अनुभव के व्यक्ति नहीं होते हैं। एक साझेदारी विनिर्माण कार्य में विशेषज्ञ हो सकता है दूसरा विपणन के क्षेत्र में और तीसरा लेखा-पद्धति में निपुण हो सकता है। इन सभी साझेदारों का मिलकर निर्णय लेना व्यक्तिगत निर्णयों की तुलना में श्रेयस्कर होता है।

4) **लचीलापन :** एकल स्वामित्व संगठन की ही भांति साझेदारी व्यवसाय में भी साझेदार ही फर्म के स्वामी होते हैं और वे ही उसका कार्य-संचालन भी करते हैं। वह बदलती हुई परिस्थितियों को आसानी से समझ जाते हैं और शीघ्रता से उसके अनुसार कार्य कर सकते हैं।

5) **गोपनीयता :** साझेदारी फर्मों में भी कुछ गोपनीयता रखी जा सकती है, क्योंकि फर्म के लेखों को प्रकाशित करना आवश्यक नहीं होता।

6) **गहन रुचि :** व्यवसाय में होने वाली हानियों तथा जोखिमों के लिए साझेदार ही उत्तरदायी होते हैं अतः वे इसके कार्यों में विशेष रुचि लेते हैं।

7) **सुरक्षा :** मूल बातों के संबंध में एकमत से निर्णय लिए जाने के नियम के कारण, सभी साझेदारों के अधिकार पूर्णतः सुरक्षित होते हैं। यदि कोई साझेदार फर्म का कार्य करने के ढंग से असंतुष्ट होता है तो वह फर्म के विघटन की माँग कर सकता है तथा अपने को फर्म से पृथक कर सकता है।

8) **लापरवाही से किए जाने वाले नियमों पर रोकथाम तथा नियंत्रण :** चूँकि साझेदारी व्यवसाय सामूहिक आधार पर चलाया जाता है और महत्वपूर्ण निर्णय में सभी साझेदार भाग लेते हैं इसलिए बिना सोचे-समझे और जल्दबाजी में निर्णय किए जाने की बहुत कम गुंजाइश होती है।

9) **जोखिम का बँटवारा :** फर्म की हानियाँ सभी साझेदारों द्वारा बांटी जाती हैं, अतः एकल स्वामित्व संगठन की तुलना में प्रत्येक साझेदार के हिस्से में हानि का बहुत थोड़ा भाग आता है।

सीमाएँ

1) **सीमित पूँजी :** साझेदारों की अधिकतम संख्या पर सीमा के कारण साझेदारी फर्म की पूँजी जुटाने की क्षमता संयुक्त स्टॉक कंपनी की तुलना में कम होती है।

2) **असीमित दायित्व :** साझेदारी फर्म की सबसे महत्वपूर्ण कमी यह है कि उसके साझेदारों का दायित्व असीमित होता है।

3) **जन विश्वास नहीं :** चूँकि लेखे अप्रकाशित तथा अविज्ञापित होते हैं इसलिए फर्म को जनता का विश्वास प्राप्त नहीं हो पाता।

4) **हित की अहस्तांतरणीयता :** सभी अन्य साझेदारों की सहमति लिए बिना कोई भी साझेदार फर्म में अपना हित किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं कर सकता।

5) **अनिश्चितता :** किसी साझेदार की आकस्मिक मृत्यु होने अथवा उसके पागल अथवा दिवालिया होने की स्थिति में साझेदारी फर्म का विघटन हो जाता है। इस कारण फर्म के चलते रहने के संबंध में अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फिर भी यदि इस प्रकार की बातों को भागीदारी विलेख में स्पष्ट कर दिया जाए तो इस स्थिति से आंशिक रूप से बचा जा सकता है।

6) **साझेदारों में विरोध :** साझेदारों में प्रायः गलतफहमी और विरोध होने की आशंका रहती है। परिणामस्वरूप निर्णय करने में देरी तो होती ही है तथा फर्म के विघटन की भी नौबत आ सकती है। यदि भागीदारी विलेख स्पष्ट तथा विस्तृत हो तो यह समस्या कुछ सीमा तक दूर हो सकती है।

7) **निहित अधिकार की जोखिम :** चूँकि प्रत्येक साझेदार फर्म तथा अन्य साझेदारों के लिए एजेंट का कार्य करता है, इसलिए एक साझेदार के कार्य फर्म तथा अन्य साझेदारों के लिए बाध्यकर होते हैं। एक बेईमान अथवा अयोग्य साझेदार फर्म को मुसीबत में फँसा सकता है और अन्य साझेदारों को उसका परिणाम भुगतना पड़ सकता है।

5.3.5 संयुक्त हिन्दू परिवार फर्म

संयुक्त हिन्दू परिवार अपने ढंग का विशिष्ट व्यावसायिक रूप हैं जो केवल भारत में ही पाया जाता है। इस प्रकार की फर्म का स्वामित्व संयुक्त हिन्दू परिवार को प्राप्त होता है और उस फर्म पर हिन्दू कानून के प्रावधान लागू होते हैं।

क) **मिताक्षर :** बंगाल तथा असम के अलावा यह सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। इस शाखा के अनुसार हिन्दू अपने पिता, पितामह से उत्तराधिकारी में सम्पत्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार पुरुष वंश में लगाातार तीन पीढ़ियाँ (पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र) पैतृक सम्पत्ति उत्तराधिकार में प्राप्त करती हैं। ये सभी सहदायिक (सह स्वामी) कहलाते हैं तथा परिवार का ज्येष्ठ व्यक्ति ''कर्त्ता'' कहलाता है। हिन्दू सेक्सशन ऐक्ट 1956 में सहदायिकी हित के उत्तराधिकारी क्षेत्र का विस्तार कर दिया है। अब मृतक सहदायिक (Coparcener) के स्त्री वंशज अथवा स्त्री वंशज के माध्यम से पुरुष संबंधी को भी भाग मिलने लगा है।

ख) **दाय भाग :** यह बंगाल तथा असम में लागू है। इसके अनुसार, पिता की मृत्यु के पश्चात् ही पुरुष उत्तराधिकारियों को सदस्यता प्राप्त होती है।

हिन्दू विधि (कानून) के अनुसार, 'कारोबार' एक दाय योग्य सम्पत्ति है। हिन्दू की मृत्यु के पश्चात् कारोबार के सभी सहदायिकों का संयुक्त रूप से स्वामित्व हो जाता है। सहदायिकों में ज्येष्ठतम व्यक्ति नया 'कर्त्ता' बन जाता है और कारोबार का प्रबंध करता है। यदि कोई सम्पत्ति किसी अन्य संबंधी से उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त होती है अथवा निजी साधनों से प्राप्त की जाती है तो वह निजी सम्पत्ति मानी जाती है और वह पैतृक सम्पत्ति से भिन्न होती है।

संयुक्त हिन्दू परिवार फर्म की महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1) परिवार का ज्येष्ठतम सदस्य जो कर्त्ता कहलाता है कारोबार चलाता है। अन्य सदस्यों को फर्म के प्रबंध में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता।

2) अन्य सदस्य कर्त्ता के अधिकार पर आपत्ति नहीं कर सकते हैं। इसके लिए उसके पास एक ही तरीका रह जाता है कि वे आपसी सहमति से परिवार का विघटन कराये।

3) कर्त्ता को कारोबार के लिए ऋण लेने का अधिकार प्राप्त है। उसका दायित्व असीमित होता है, जबकि अन्य सदस्यों का दायित्व कारोबार में उनके हित तक ही सीमित होता है।

4) यदि कर्त्ता ने कारोबार के धन का गबन किया है तो उसे अन्य सहदायिकों को क्षतिपूर्ति करनी होगी जो संयुक्त संपत्ति में उनके हितों के अनुरूप होगी।

5) परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने से परिवार का कारोबार बंद नहीं हो जाता।

6) आपसी मतैक्य द्वारा संयुक्त हिन्दू पारिवारिक फर्म का विघटन किया जा सकता है।

आपको साझेदारी फर्म तथा संयुक्त हिन्दू परिवार में अंतर जान लेना चाहिए। संयुक्त हिन्दू परिवार हिन्दू विधि के प्रवर्तन का परिणाम है। किसी व्यवसाय को संयुक्त हिन्दू पारिवारिक व्यवसाय में बदलने के लिए किसी औपचारिक करार की आवश्यकता नहीं होती। परिवार के सदस्य स्वतः ही व्यवसाय के सहस्वामी बन जाते हैं। व्यवसाय का प्रबंधन केवल कर्त्ता ही कर सकता है। कर्त्ता का दायित्व असीमित होता है जबकि सहदायिकों का दायित्व व्यवसाय में उनके हित तक ही सीमित रहता है। सहस्वामियों के अधिकार, कर्त्तव्य और दायित्व हिन्दू विधि के प्रावधानों से नियंत्रित होते हैं। साझेदारी कुछ व्यक्तियों के बीच हुए करार का परिणाम होती है, और यह जरूरी नहीं कि व्यक्तियों में रक्त-संबंध हो। प्रत्येक साझेदार को व्यवसाय के प्रबंधन में भाग लेने का अधिकार होता है। प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है। साझेदारों के कर्त्तव्य, अधिकार तथा दायित्व पर भारतीय भागीदारी अधिनियम 1932 के प्रावधान लागू होते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   i) बैंकिंग कारोबार करने वाले साझेदारी व्यवसाय में साझेदारों की अधिकतम संख्या ..... होती है।

   ii) साझेदारी फर्म में साझेदारों का दायित्व ..... होता है।

   iii) वह साझेदार जो फर्म के प्रबंध में भाग नहीं लेता ..... साझेदार कहलाता है।

   iv) साझेदारी फर्म में साझेदारों की न्यूनतम संख्या ..... होती है।

v) पंजीकृत साझेदारी करार ..... कहलाता है।

vi) किसी व्यक्ति के अपने व्यवहार से यदि यह प्रकट होता है कि वह भी साझेदारी फर्म में एक साझेदार है तो ऐसे साझेदार को ..... कहा जाता है।

vii) यदि साझेदार का दायित्व उसके द्वारा लगाई गई पूँजी तक ही सीमित होता है तो ऐसा साझेदार ..... कहलाता है।

2) बताएँ की निम्नलिखित कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

i) साझेदारी करार लिखित ही होना चाहिए। ( )

ii) साझेदारी संगठन में सदस्यों की संखया की कोई अधिकतम सीमा नहीं होती। ( )

iii) साझेदार फर्म के सदस्य साझेदार कहलाते हैं। ( )

iv) अन्य साझेदारों की सहमति लिए बिना ही एक साझेदार फर्म में अपने हित को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित कर सकता है। ( )

v) प्रत्येक साझेदार फर्म का स्वामी होता है तथा फर्म का एजेंट भी। ( )

vi) सुप्त साझेदार फर्म के कार्य संचालन में सक्रिय रूप में भाग लेता है। ( )

vii) एक व्यक्ति जो व्यपदेशन द्वारा साझेदार बनता है लाभ प्राप्त करने का अधिकारी होता है। ( )

viii) एक साझेदार के कार्य फर्म तथा शेष साझेदारों के लिए बाध्य-कर होते हैं। ( )

5.4 कंपनी संगठन

आप यह जान चुके हैं कि एकल व्यवसाय तथा साझेदारी व्यवसाय में सीमित साधन, असीमित दायित्व, सीमित प्रबंध कौशल आदि दोष पाए जाते हैं। संगठन का जीवन तथा स्थायित्व भी इनके स्वामियों/साझेदारों के जीवन तथा स्थायित्व पर निर्भर होता है। अतः ये संगठन बड़े पैमाने पर चलाए जाने वाले व्यवसायों के लिए उपयुक्त नहीं माने जाते।

बड़े पैमाने के व्यवसायों के लिए भारी निवेश तथा विशिष्ट प्रबंधन कौशल की आवश्यकता होती है। जोखिम का तत्व भी अधिक होता है। इन्हीं परिस्थितियों ने कंपनी जैसे व्यावसायिक संगठन को जन्म दिया है। संयुक्त पूँजी कंपनी की स्थिति में पूँजी एक या दो व्यक्तियों द्वारा नहीं जुटाई जाती, वरन् बहुत अधिक व्यक्तियों द्वारा जुटाई जाती है, जिन्हे शेयरधारी (Shareholder) कहा जाता है। इस प्रकार बड़ी मात्रा में पूँजी जुटाना संभव हो जाता है। एक संयुक्त पूँजी कंपनी, कारोबार चलाने के लिए व्यक्तियों का एक संघ है, जिसे कंपनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत कराया जाता है। यह कृत्रिम व्यक्ति कहलाता है क्योंकि इसका सृजन कानून द्वारा होता है। इसका एक अपना विशिष्ट नाम होता है, इसकी एक सार्व मुद्रा (कॉमन सील) होती है तथा इसकी अनंत सदस्यता होती है। यह अपने नाम से मुकदमा दायर कर सकती है और उसके नाम से उस पर मुकदमा दायर किया जा सकता है। कंपनी की अत्यंत व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा (यू.एस.ए. में इसे कार्पोरेशन (निगम) कहा जाता है।) प्रधान न्यायमूर्ति मार्शल द्वारा दी गई है। उनके अनुसार कार्पोरेशन (निगम) एक कृत्रिम, अदृश्य और अमूर्त जीव है जिसका अस्तित्व केवल कानून की दृष्टि में है। कानून द्वारा उत्पन्न होने के कारण इसके केवल वे ही गुण होते हैं जिन्हें इसको स्थापित

करने वाला चार्टर प्रत्यक्ष रूप से अथवा परोक्ष रूप से इसे जीवित रखने के लिए प्रदान करता है। न्यायमूर्ति लार्ड लिंडले ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है, ''यह बहुत से व्यक्तियों का संघ है जो संयुक्त (Common Stock) में द्रव्य अथवा द्रव्य के मूल्य के बराबर की वस्तु का अंशदान करते हैं और एक सामान्य उद्देश्य के लिए उनका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जुटायी गयी रकम कंपनी की पूँजी कहलाती है। वे व्यक्ति जो इसमें अंशदान करते हैं अथवा जो इसके स्वामी होते हैं, इसके सदस्य कहलाते हैं। पूँजी का आनुपातिक भाग जिस पर प्रत्येक सदस्य का अधिकार होता है, उसका अंश (शेयर) कहलाता है''।

''दि कंपनीज़ एक्ट 1956'' ने संयुक्त पूँजी कंपनी की परिभाषा इस प्रकार दी है, '' ये शेयरों द्वारा सीमित कंपनी होती है जिसकी निश्चित मूल्य के शेयरों में विभाजित स्थायी प्रदत्त पूँजी अथवा निश्चित रकम की अधिकृत पूँजी होती है जो स्टॉक की भांति रखी तथा हस्तांतरित की जा सकती है। कंपनी की स्थापना इस सिद्वांत के आधार पर होती है कि केवल इसके सदस्य ही उन शेयरों अथवा स्टॉक के स्वामी हो सकते हैं, अन्य व्यक्ति नहीं।''

5.4.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कंपनी जैसे व्यावसायिक संगठन की विशेषताओं को निम्न प्रकार से सूचीबद्ध कर सकते हैं:

1) **निगम (Incorporation) :** कम्पनी एक निगमित संघ हैं। कम्पनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत होने के पश्चात् ही इसका जन्म हो पाता है।

2) **कृत्रिम व्यक्ति (Artificial Person) :** कम्पनी कृत्रिम व्यक्ति मानी जाती है क्योंकि कानून द्वारा इसका सृजन होता है और कानून द्वारा ही इसका विघटन किया जा सकता है। इसका न तो कोई शरीर होता है और न ही आत्मा और न ही इसमें कोई विवेक होता है, फिर भी इसका अस्तित्व होता है। अन्य किसी व्यक्ति की ही भांति यह सम्पत्ति का स्वामी हो सकती है, विधिक व्यवसाय चला सकती है, अन्य व्यक्तियों के साथ करार कर सकती है तथा सम्पत्ति का क्रय–विक्रय कर सकती है। यह समस्त कार्य वह अपने नाम में तथा अपनी मुद्रा लगाकर कर सकती है।

3) **पृथक् विधिक अस्तित्व (Separate Legal Entity):** कंपनी का अपने सदस्यों से पृथक अस्तित्व होता है। कंपनी का एक शेयरधारी कंपनी के साथ करार कर सकता है, कंपनी पर मुकदमा चला सकता है तथा कंपनी उस पर मुकदमा कर सकती है। आप जानते हैं कि साझेदारी व्यवसाय में प्रत्येक साझेदार फर्म का तथा अन्य साझेदारों का एजेंट होता है। परंतु शेयर कंपनी अथवा उसके अन्य शेयरधारियों का एजेंट नहीं होता। वह अपने कार्यों से उन्हें बाध्य नहीं कर सकता।

4) **सार्व मुद्रा (Common Seal) :** कंपनी प्राकृतिक व्यक्ति नहीं है। अतः वह किसी प्रलेख पर हस्ताक्षर नहीं कर सकती। उसके पास सामान्य मुद्रा के रूप में एक युक्ति होती है जिस पर उसका नाम खुदा होता है। यह मुद्रा कंपनी के हस्ताक्षर का स्थान लेती है। यह सभी महत्वपूर्ण कानूनी दस्तावेजों तथा संविदाओं पर लगाई जाती है। निदेशकमंडल के आदेश पर इसे लगाया जाता है तथा जिस प्रलेख पर यह लगाई जाती है, उस पर गवाह के रूप में दो निदेशकों को हस्ताक्षर करने होते हैं।

5) **अनंत अस्तित्व (Perpetual Succession) :** संयुक्त स्टॉक कंपनी का निरंतर अस्तित्व बना रहता है। इसके जीवन पर इसके शेयरधारियों अथवा निदेशकों की मृत्यु होने, पागल होने, दिवालिया होने अथवा अवकाश ग्रहण करने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

सदस्य आते–जाते रहते हैं, किंतु कंपनी अपने विधिक कार्यकलाप तब तक चलाती रहती है जब तक कि यह विधिक रूप से विघटित नहीं हो जाती। इस प्रकार कंपनी का अनंत अस्तित्व होता है। सदस्यता का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस गुण से इस प्रकार के संगठन को स्थायित्व प्राप्त होता है।

6) **प्रबंध तथा स्वामित्व में अलगाव :** कंपनी के शेयरधारी समस्त देश में फैले होते हैं। उसके कारोबार को चलाने और उसका प्रबंध करने के लिए, उसके शेयरधारी अपने बीच से ही कुछ लोगों का निर्वाचन करते हैं, जिन्हें निदेशक कहते हैं। कंपनी के कार्यों का प्रबंध करने का अधिकार निदेशकों को होता है जो शेयरधारियों के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। अस्तु स्वामित्व प्रबंध से पृथक रहता है।

7) **सदस्यों की संख्या :** पब्लिक लिमिटेड कंपनी में सदस्यों की न्यूनतम संख्या सात रहती है जबकि अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं है। प्राइवेट लिमिटेड कंपनी की स्थिति में सदस्यों की न्यूनतम संख्या दो और अधिकतम संख्या 200 होती है।

8) **सीमित दायित्व :** सामान्यतः कंपनी के सदस्यों का दायित्व, शेयरों अथवा गारंटी द्वारा सीमित होता है। सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा लिए गए शेयरों के अंकित मूल्य तक ही सीमित होता है। कंपनी की देयताओं के लिए सदस्य निजी रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराएं जाते। अतः कंपनी के ऋण चुकाने के लिए सदस्यों की निजी सम्पत्ति की कुर्की नहीं की जा सकती।

उदाहरण के लिए, कंपनी के शेयरों का अंकित मूल्य 10 रुपया है जिसे सदस्यों ने पहले ही अदा कर दिया है। कंपनी के समापन के समय कंपनी सदस्यों से और रकम देने के लिए नहीं कह सकती। परंतु यदि सदस्य ने केवल सात रुपये ही दिए हैं तो उससे शेष 3 रुपये का भुगतान करने के लिए कहा जा सकता है, उससे अधिक नहीं। (अंकित मूल्य 10 रुपये, में से दी गई रकम 7 रुपए, घटाएँ, अन्तर 3 रुपये)

9) **शेयरों की हस्तांतरणीयता :** सार्वजनिक कंपनी के सदस्य अपने शेयरों को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित करने का सांविधिक मिला हुआ है। ऐसा करने के लिए उसे अन्य शेयरधारियों की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती। परंतु शेयरों का हस्तांतरण करने के लिए उसे कंपनी अधिनियम में दी हुई निर्धारित विधि का पालन करना होता है किंतु प्राइवेट कंपनी की दशा में शेयरों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगा होता है।

10) **उद्देश्यों के पालन में कठोरता :** कंपनी के व्यवसाय का क्षेत्र सीमित होता है। इसके सीमा नियम के ''उद्देश्य खंड'' में उस व्यवसाय की प्रकृति का वर्णन होता है जिसे वह कर सकती है। उद्देश्य खंड में परिवर्तन किए बिना वह अन्य कार्य नहीं कर सकती। उद्देश्य खंड में परिवर्तन करने के लिए कंपनी को कंपनी अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन करना होता है।

11) **सांविधिक विनियम (Statutory Regulations):** कंपनी को कंपनी अधिनियम के अनुसार चलाना होता है तथा अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का पालन करना होता है। उसे अनेक विवरणियों सरकार को प्रस्तुत करनी होती है। कंपनी का लेखा किसी चार्टर्ड एकाउन्टेट द्वारा लेखापरीक्षित होना आवश्यक है। अस्तु, कंपनी को अनेक तथा विभिन्न प्रकार की सांविधिक अपेक्षाओं का पालन करना पड़ता है।

संयुक्त स्टॉक कंपनी की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब आप यह आसानी से कह सकते हैं कि कंपनी के वास्तविक स्वामी शेयरधारी ही होते हैं।

उनकी देयता सीमित होती है। वे अन्य व्यक्तियों को अपने शेयरों का हस्तांतरण कर सकते हैं। चूंकि शेयरधारी संख्या में बहुत अधिक होते हैं, अतः सभी कंपनी का प्रबंध नहीं कर सकते। अतः वे एक निदेशकमंडल का निर्वाचन करते हैं जो कंपनी का प्रबंधन करता है। कंपनी का भाग्य इन निदेशकों के पथप्रदर्शन तथा निदेशन पर निर्भर होता है। ये निदेशक कंपनी का दिन–प्रतिदिन का कार्य करने के लिए कुछ व्यक्तियों को नियुक्ति करते हैं। कंपनी ऋण पत्रों (जिन्हें बॉण्ड) भी कहा जाता है का निर्गम कर अतिरिक्त पूँजी जुटा सकती है। आप इनके बारे में और अधिक इकाई 5 और 6 में जान पाएँगे।

5.4.2 कंपनियों का वर्गीकरण

हम कंपनियों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधार पर कर सकते हैं : 1) निगमन की विधि, 2) दायित्व की सीमा, 3) शेयरधारियों की श्रेणियों, 4) कार्यकलाप का क्षेत्र। कंपनियों के वर्गीकरण के लिए चित्र 5.3 देखिए।

1) निगमन की विधि के आधार पर, हम कंपनियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं :

   क) सांविधिक कंपनी (Statutory Company) : संसद अथवा विधान सभा में पारित विशेष अधिनियम के आधार पर संस्थापित कंपनी 'सांविधिक कंपनी' कहलाती है। इस प्रकार की कंपनियाँ विशेष स्थिति में स्थापित की जाती है। जब कुछ विशेष प्रयोजनों के लिए कंपनी के कार्य का नियमन करने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार निगमों के उदाहरण है– भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम, एयर इंडिया निगम, भारतीय खाद्य निगम आदि अधिकतर ये सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम है।

   ख) पंजीकृत कंपनी (Registered Company) : वह कंपनी जो कंपनी अधिनियम 1956 के अंतर्गत, कंपनियों के रजिस्ट्रार के कार्यालय में पंजीकृत कराई जाती है, उसे निगमित कंपनी भी कहते हैं। निजी क्षेत्र की सभी कंपनियां इस श्रेणी में आती है।

   ग) चार्टर्ड कम्पनी (Chartered Company) : वह कम्पनी जो विशेष शाही फरमान (Royal Charter) द्वारा स्थापित होती है। 'चार्टर्ड कम्पनी' कहलाती है। यह फरमान देश के राजा द्वारा जारी किया जाता है। चार्टर के प्रावधानों के अनुसार ऐसी कम्पनी का नियमन होता है। इस प्रकार कम्पनी के उदाहरण हैं– ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी : बैंक ऑफ इंग्लैण्ड, हडसन्स व कम्पनी, आदि। भारत में इस प्रकार की कम्पनियों नहीं है क्योंकि यहां राजतंत्र नहीं है।

2) देयता के प्रकार के आधार पर कम्पनियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

   क) असीमित देयता कम्पनियाँ (Unlimited Companies) : वह कम्पनी जिसके सदस्यों की देयता असीमित होती है, असीमित कम्पनी कहलाती है। कम्पनी के समापन के समय यदि आवश्यक हो तो कम्पनी के ऋण को चुकाने के लिए शेयरधारियों को अपनी निजी सम्पत्तियों का प्रयोग करना पड़ सकता है। इस दृष्टि से ये कम्पनियाँ, एकल स्वामित्व तथा सझेदारी संगठन से बहुत मिलती जुलती है। किन्तु इस प्रकार की कम्पनियों की संख्या बहुत ही कम है।

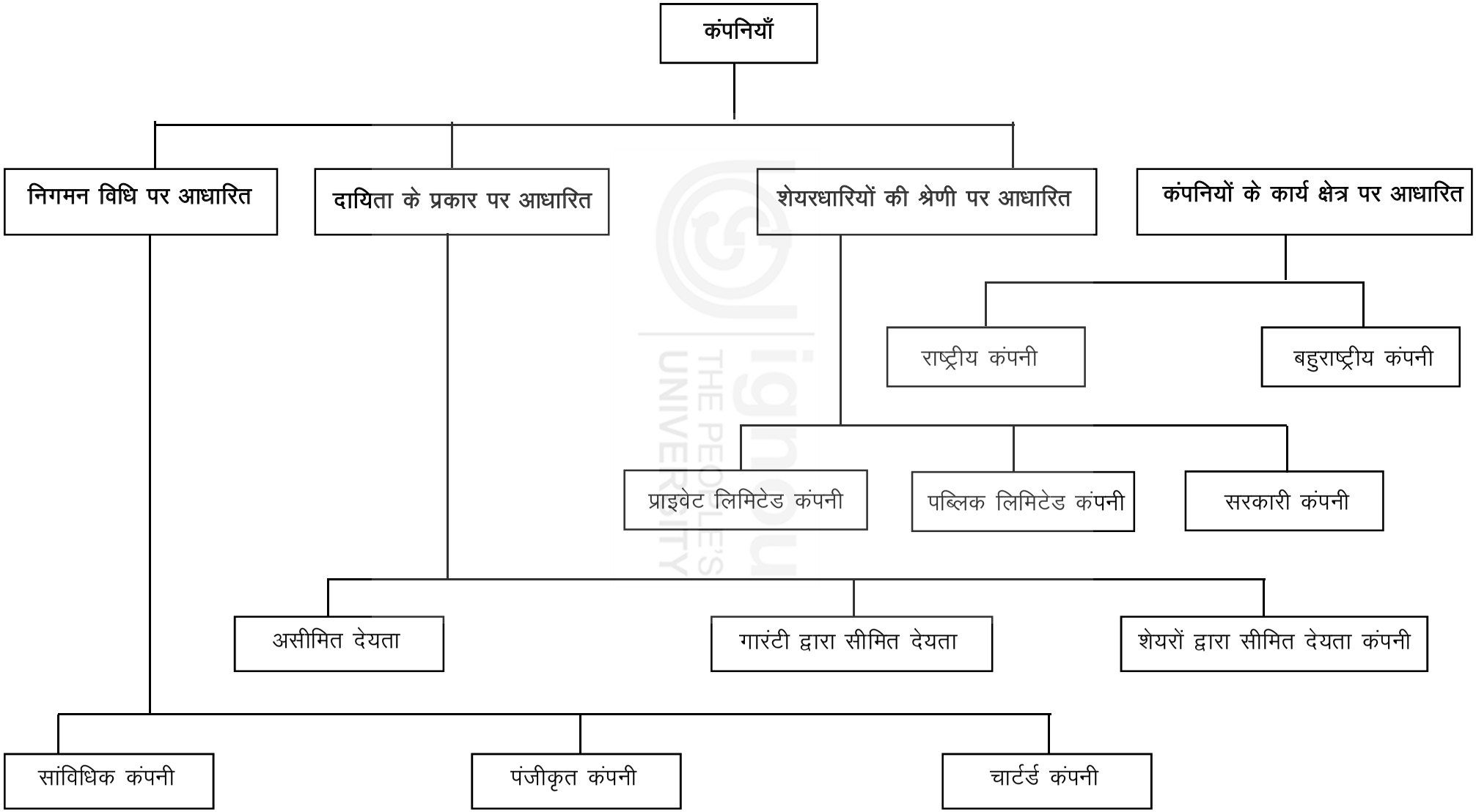

चित्र 2.3: कम्पनियों का वर्गीकरण

ख) **गारंटी द्वारा सीमित देयता वाली कम्पनियाँ (Companies Limited by Guarantee):** कुछ कम्पनियाँ ऐसी होती हैं जिनके सदस्यों के पास शेयर तो होते ही हैं, परन्तु इसके अलावा भी वे एक सीमा तक कम्पनी के ऋण को चुकाने का दायित्व स्वीकार करते हैं। सदस्यों द्वारा गारंटीकृत अतिरिक्त रकम का प्रायः कम्पनी की सीमा नियम में उल्लेख होता है। ऐसी कम्पनियाँ लाभ कमाने के लिए स्थापित नहीं की जाती। उनकी स्थापना कला, संस्कृति, धर्म, व्यापार, खेलकूद आदि के विकास तथा क्लब, परोपकारी संस्थाओं, व्यापारिक संघ आदि के लिए की जाती है।

ग) **शेयरों द्वारा सीमित कम्पनियाँ (Companies Limited by Shares) :** इस प्रकार की कम्पनियों में शेयर धारियों की देयता उनके द्वारा लिए गए शेयरों के मूल्य तक ही सीमित होती है। किसी शेयरधारी को उसके द्वारा लिए गए शेयर के मूल्य के बाकी रकम को ही चुकाने के लिए बाध्य किया जा सकता है, उससे अधिक रकम के लिए नहीं, अधिकांश कम्पनियाँ इसी श्रेणी में आती हैं।

स्वामित्व के आधार पर, कंपनियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

क) **प्राइवेट लिमिटेड कंपनियाँ (Private Limited Companies) :** प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी वह होती है जिसमें उसके अनुच्छेद के अधीन :

i) कंपनी के शेयरों को हस्तांतरित करने के अधिकार पर प्रतिबंध होता है,

ii) सदस्यों की अधिकतम संख्या 200 तक सीमित होती है और

iii) कंपनी का शेयर तथा ऋणपत्र लेने के लिए जनता को आमंत्रित करना वर्जित होता है।

ख) **पब्लिक लिमिटेड कंपनियाँ (Public Limited Companies):** पब्लिक लिमिटेड कंपनी वह है जो प्राइवेट लिमिटेड कंपनी नहीं होती। निम्नलिखित विशेषताएं रखने वाली कंपनी पब्लिक लिमिटेड कंपनी कहलाती है।

i) जिसमें शेयरधारी के शेयर हस्तांतरित करने के अधिकार पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाता है।

ii) सदस्यों की न्यूनतम संख्या 7 होती है परंतु अधिकतम संख्या सीमित नहीं होती।

iii) अपने शेयर तथा ऋण–पत्र लेने के लिए यह जनता को निमंत्रित कर सकती है। सीमित दायित्व वाली निजी कम्पनी में सदस्यों की न्यूनतम संख्या दो होती हैं और वह पब्लिक लिमिटेड कम्पनी की तुलना में अपेक्षाकृत सरलता से स्थापित हो जाती है। इसे कम्पनी अधिनियम के बहुत से विनियमों से छूट मिली होती है। इस प्रकार इसे सीमित दायित्व तथा साझेदारी संगठन दोनों का लाभ मिल जाता है। मध्यम आकार वाले व्यवसाय के लिए यह उपयुक्त मानी जाती है।

ग) **सरकारी कम्पनी (Government Company) :** वह कम्पनी जिसकी प्रदत्त (Paid up) शेयर पूँजी का कम से कम 51 प्रतिशत भाग, केन्द्रीय सरकार अथवा किसी राज्य सरकार अथवा संयुक्त रूप से केन्द्रीय सरकार तथा/अथवा राज्य सरकारों के पास हो सरकारी कम्पनी कहलाती हैं।

4) कार्य क्षेत्र के आधार पर, कम्पनियों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं :

क) **राष्ट्रीय कम्पनी (National Company) :** यदि किसी कम्पनी के कार्यकलाप उस देश की भौगोलिक सीमा के अन्दर ही होते हैं, जहाँ वह पंजीकृत हुई है, तो ऐसी कम्पनी राष्ट्रीय कम्पनी कही जाती हैं।

ख) **बहुराष्ट्रीय कम्पनी (Multinational Company) :** यदि कम्पनी के कार्यकलाप उस देश की भौगोलिक सीमा के बाहर भी होते हों जहाँ वह पंजीकृत हुई है तो ऐसी कम्पनी बहुराष्ट्रीय (मल्टीनेशनल) कम्पनी कहलाती है। इसको राष्ट्र–पार (ट्रांसनेशनल कम्पनी भी कहते हैं)

5.4.3 गुण व सीमाएँ

प्रायः सभी देशों में कंपनी संगठन लोकप्रिय तथा सफल रहा है। जहाँ बड़ी मात्रा में साधनों की आवश्यकता पड़ती है तथा उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है, संगठन का यह रूप उपयुक्त होता है। 20वीं सदी में संयुक्त स्टॉक कंपनियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। अब हम संगठन के कंपनी रूप के गुण व सीमाओं का विवेचन करेंगे।

1) **बड़ी मात्रा में पूँजी :** संगठन के कंपनी के रूप में बड़ी संख्या के शेयरधारी होते हैं अतः बड़ी मात्रा में पूँजी प्राप्त करना संभव हो जाता है। जब कभी और पूँजी की आवश्यकता होती है, यह शेयर तथा ऋण-पत्र जारी कर सकती है। इस कारण केवल कंपनी जैसा संगठन ही सबसे अधिक उपयुक्त रहता है।

2) **सीमित दायित्व :** शेयरधारियों का दायित्व, यदि अन्यथा उल्लिखित न हो, उनके द्वारा लिए गए शेयरों के अंकित मूल्य तक अथवा उनके द्वारा दी गई गारंटी तक सीमित होती है। कंपनी से ऋणों की वसूली के लिए शेयरधारियों की निजी सम्पत्ति कुर्क नहीं कराई जा सकती। अस्तु, संगठन का यह रूप उन व्यक्तियों के लिए बड़ा आकर्षक है जो अधिक जोखिम नहीं उठाना चाहते। एकल स्वामित्व तथा साझेदारी व्यवसाय में बहुत अधिक जोखिम रहता है।

3) **स्थायी अस्तित्व :** कंपनी की पृथक विधिक सत्ता और शाश्वत जीवन होता है। निगम के जीवन पर शेयरधारी, निदेशक अथवा अधिकारी के पागल अथवा दिवालिया होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कंपनी के जीवन की निरंतरता न केवल इसके सदस्यों के लिए वरन् समाज के लिए भी वांछनीय है।

4) **बड़े पैमाने के कारोबार से होने वाली बचत :** चूँकि ऐसी कंपनियाँ बड़े पैमाने पर कार्य करती हैं, अतः उन्हें बड़े पैमाने पर क्रय, विक्रय, उत्पाद आदि से होने वाले बचत का लाभ मिल जाता है। बड़े पैमाने की बचत के परिणास्वरूप कंपनी अपने ग्राहकों को सस्ती कीमत पर वस्तुएं उपलब्ध करा सकती है।

5) **विस्तार के लिए संभावना :** चूँकि सार्वजनिक कंपनी में शेयरधारियों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं होती, अतः नवीन शेयरों और ऋणपत्रों का निर्गम करके उसका विस्तार करना सरल होता है। कंपनियाँ प्रायः अपने लाभ का कुछ भाग रिजर्व कोष में रखती है और इसका उपयोग विस्तार के लिए करती हैं।

6) **लोक-विश्वास :** कंपनियों पर सरकारी नियंत्रण एवं विनियम लागू होते हैं। उनकी लेखा पुस्तकों की चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा लेखापरीक्षा की जाती है और उन्हें प्रकाशित भी किया जाता है। इससे कंपनियों की कार्यप्रणाली पर जनता में विश्वास उत्पन्न होता है।

7) **शेयरों की हस्तांतरणीयता :** शेयर बाजार में सार्वजनिक सीमित कंपनी के शेयर कभी भी बेचे जा सकते हैं। शेयरधारी अपनी इच्छा से कभी भी अपने शेयर बेच सकते हैं। इसके लिए अन्य शेयरधारियों की सम्मति लेना आवश्यक नहीं होता। शेयरधारी बिना अधिक कठिनाई के अपने शेयर नकदी में बदल सकते हैं।

8) **पेशेवरों द्वारा प्रबंधन :** आप जानते हैं कि कंपनी का प्रबंधन निदेशकों के हाथ में रहता है जो शेयरधारियों द्वारा निर्वाचित होते हैं। प्रायः अनुभवी व्यक्तियों को ही निदेशक निर्वाचित किया जाता है। आप यह भी जानते हैं कि दिन-प्रतिदिन के कार्य वेतन-भोगी प्रबंधकों द्वारा किए जाते हैं। ये प्रबंधक अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं। चूँकि कंपनियों का बड़े पैमाने पर कारोबार होता है तथा उनका मुनाफा भी बड़ी मात्रा में होता है अतः वे अच्छा वेतन देकर सुयोग्य पेशेवर प्रबंधकों की नियुक्ति कर सकती है। इस प्रकार संगठन के कंपनी रूप अपने निदेशकमंडल में तथा प्रबंधकों के विभिन्न पदों पर पेशेवर व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त कर लेते हैं।

9) **कर-लाभ :** कंपनियाँ एक समान-दर (flat rate) पर आयकर देती हैं। इसके कराधान में स्लैब पद्धति का कोई स्थान नहीं है। इसके फलस्वरूप कंपनियाँ अन्य संगठनों की तुलना में अधिक आय पर कम कर चुकाती हैं। यदि वे पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित की जाएं तो उन्हें कर में कुछ छूट भी प्राप्त होती है।

10) **जोखिम का बँटवारा :** चूँकि कंपनी के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती है अतः व्यापारिक जोखिम कंपनी के सभी सदस्यों में बँट जाती है। यह छोटे-छोटे निवेशकों के लिए लाभदायक सिद्ध होता है।

सीमाएँ

1) **स्थापना में कठिनाई :** कंपनी की स्थापना उतनी सरल नहीं है जितनी कि एकल स्वामित्व व्यवसाय अथवा साझेदारी व्यवसाय की। कंपनी के निगमन के लिए कुछ व्यक्तियों को परस्पर सहयोग करने के लिए तैयार होना पड़ता है, जिन्हें प्रवर्तक कहा जाता है। इसके पंजीकरण के समय अनेक औपचरिकताओं को निभाना पड़ता है। कंपनी की स्थापना खर्चीली भी है और कठिन भी।

2) **गोपनीयता का अभाव :** कंपनी का प्रबंधन प्रायः बहुत से व्यक्तियों के हाथों में रहता है। निदेशकमंडल की बैठक में प्रत्येक बात पर विचार किया जाता है। अतः एकल व्यवसायी तथा साझेदारी फर्म की तुलना में संगठन के कंपनी रूप की व्यावसायिक बातों को गोपनीय रखना अपेक्षाकृत कठिन हो जाता है।

3) **निर्णय लेने में देरी :** संगठन के कंपनी रूप में सभी महत्वपूर्ण निर्णय या तो निदेशक मंडल द्वारा अथवा शेयरधारियों द्वारा अपनी बैठकों में किए जाते हैं। अतः निर्णय-प्रक्रिया में समय लगता है। यदि शीघ्र निर्णय किया जाना है तो तुरंत बैठक का आयोजन करना कठिन हो जाएगा, और निर्णय में देरी के कारण कुछ व्यावसायिक अवसर हाथ से निकल जाएँगे।

4) **अल्प हितों की उपेक्षा :** शेयरधारियों के बहुसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधि निदेशक मंडल के सदस्य बन जाते हैं। अल्पसंख्यक शेयरधारी वर्ग कभी भी निदेशकमंडल में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप, अल्पसंख्यक सदस्यों के हितों की अवहेलना होती रहती है। तथा वे बहुसंख्यक वर्ग के हाथों सताए जाते रहते हैं।

5) **आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण :** संगठन का कंपनी रूप आर्थिक शक्ति को कुछ हाथों में

केंद्रित करने को बढ़ावा देता है। कुछ व्यक्ति बहुत सी कंपनियों में निदेशक बन जाते हैं तथा निजी हितों को पूरा करने वाली नीतियाँ अपनाते हैं। वे अन्य अनेक कंपनियों के शेयर खरीदकर उन्हें नियंत्रित कंपनियाँ बना लेते हैं। कंपनियों की स्थापना तथा कुछ व्यक्तियों को बहुत सी कंपनियों का निदेशक बन जाना कुछ ही व्यापारिक गृहों के हाथों में आर्थिक शक्ति को केंद्रित करने में सहायक होते हैं।

6) **व्यक्तिगत रुचि की कमी :** एकल स्वामित्व तथा साझेदारी फर्मों का प्रबंधन स्वयं फर्म के स्वामियों द्वारा ही किया जाता है। कंपनी जैसे संगठन में दिन-प्रतिदिन का प्रबंधन वेतन भोगी अधिकारियों द्वारा किया जाता है। इन व्यक्तियों का कंपनी से कोई व्यक्तिगत लगाव नहीं रहता। इसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने की शक्ति में कमी आ सकती है तथा उनकी कार्य-कुशलता घट सकती है।

7) **अधिक सरकारी प्रतिबंध :** कंपनी पर ऐसे बहुत से प्रतिबंध लगे होते हैं जिनमें एकल व्यवसाय तथा साझेदारी व्यवसाय बचे रहते हैं। अतः कंपनी को अपना बहुत सा समय तथा श्रम इन विभिन्न कानूनी औपचारिकताओं को पूरा करने में लगाना पड़ता है।

8) **कपट पूर्ण प्रबंधन :** कुछ कपटी प्रवर्तक जाली कंपनी बना लेते हैं तथा वे उनके शेयर निर्गमित कर लाभ रकम एकत्रित करते हैं। बाद में, उन कंपनियों का समापन कर वे अपना पल्ला झाड़ देते हैं। यह भी संभव है कि निदेशक एवं पेशेवर प्रबंधक अपने निजी लाभ के लिए कंपनी के धन का दुरुपयोग कर लें, जिससे कंपनी को हानि उठानी पड़े।

बोध प्रश्न 3

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

   i) पब्लिक लिमिटेड कंपनी में सदस्यों की संख्या, न्यूनतम ..... और अधिकतम ..... होती है।

   ii) प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में सदस्यों की संख्या न्यूनतम ..... और अधिकतम ..... होती है।

   iii) संयुक्त पूँजी कंपनी में प्रायः सदस्यों का दायित्व .....।

   iv) सरकारी कंपनी में ..... प्रतिशत शेयर सरकार द्वारा लिए जाते हैं।

   v) असीमित दायित्व वाली कंपनी में, सदस्यों का दायित्व ..... होता है।

   vi) संसद के विशेष अधिनियम द्वारा स्थापित कंपनी ..... कंपनी कहलाती है।

2) बताएँ की निम्नलिखित कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

   i) कंपनी कानून द्वारा उत्पन्न कृत्रिम व्यक्ति हैं। ( )

   ii) कंपनी में शेयरधारी अन्य व्यक्तियों को अपने शेयरों का हस्तांतरण नहीं कर सकते। ( )

   iii) बड़े पैमाने के व्यवसाय के लिए कंपनी जैसा संगठन उपयुक्त नहीं होता। ( )

   iv) एकल स्वामित्व और साझेदारी फर्मों की तुलना में कंपनियाँ बड़े कारोबार की बचत का लाभ प्राप्त कर सकती हैं। ( )

v) कंपनी अपने नाम से संपत्ति का क्रय नहीं कर सकती हैं। ( )

vi) कंपनी की स्थापना में विधिक औपचारिकताएँ हैं। ( )

vii) कंपनी अपने शेयरधारियों से पृथक होती है तथा अपना पृथक अस्तित्व रखती है। ( )

viii) अधिकांश शेयरधारियों की मृत्यु हो जाने पर कंपनी का विघटन हो जाता है। ( )

5.5 सहकारी संगठन

सहकारी संगठन प्रायः आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों द्वारा व्यवसायों के माध्यम से अपने समान आर्थिक हितों को प्राप्त करने के लिए स्थापित किए जाते हैं। सहकारी संगठनों का मूल सिद्धांत स्वयं की सहायता तथा परस्पर सहायता करना है। किसी भी सहकारी संगठन का मूल उद्देश्य अपने सदस्यों की सेवा करना होता है। इस दृष्टि से यह अन्य तीन संगठनों से भिन्न है, जो मुख्यतः लाभ कमाने के लिए होते हैं। सरकारी संगठन की महत्वपूर्ण विशेषताएँ लाभ के स्थान पर सेवा, प्रतियोगिता के स्थान पर परस्पर सहायता, निर्भरता के स्थान पर स्वावलंबन तथा कारोबार के स्थान पर नैतिक एकता बनाए रखना है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार, ''सहकारी संगठन ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिनके साधन प्रायः सीमित होते हैं, जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक आपसी मेल-मिलाप से एक सार्वजनिक आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोकतंत्रात्मक रूप से चलाए जाने वाले व्यावसायिक संगठन की स्थापना की है, जो आवश्यक पूँजी को न्यायोचित आधार पर जुटाते हैं और उपक्रम के लाभ और जोखिम में समुचित भागीदार होते हैं।''

कालवर्ट ने सहकारिता की परिभाषा इस प्रकार दी है, '' यह एक प्रकार का व्यावसायिक संगठन है जिसमें व्यक्ति मनुष्य के नाते स्वेच्छापूर्वक एकत्रित होते हैं और समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितों का प्रवर्तन करते हैं।''

भारतीय सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1912 की धारा 4 में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है, ''यह एक संस्था है, जिसका उद्देश्य सहकारिता के सिद्धांतों के आधार पर अपने सदस्यों के आर्थिक हितों का प्रवर्तन करना होता है।''

उक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि सहकारी संगठन उन व्यक्तियों का स्वैच्छिक संघ है जो आर्थिक रूप से सशक्त नहीं होते और अपने पांवों पर खड़े नहीं हो सकते। वे लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं, वरन् पर्याप्त वित्तीय साधनों के अभाव को दूर करने के लिए आपस में मिल जाते हैं। इस प्रकार के संगठन का मूल उद्देश्य स्वावलंबन तथा परस्पर सहायता करना होता है।

सहकारी संगठनों को उस राज्य में जहाँ समिति का पंजीकृत कार्यालय स्थापित करना हो, सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के कार्यालय में पंजीकृत कराना होता है। सहकारी समिति की स्थापना के लिए कम से कम दस सदस्यों का होना आवश्यक है परन्तु सदस्यों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं है।

कंपनी संगठन की ही भांति, सहकारी समिति के सदस्य समिति के स्वामी होते हैं। वे ही आवश्यक पूँजी जुटाते हैं तथा मुनाफे में से अपना भाग पाते हैं जिसे डिविडेंड या लाभांश कहते हैं। सदस्यों का दायित्व सीमित होता है।

समिति का प्रबंध समिति द्वारा किया जाता है जिसके सदस्यों का निर्वाचन इसकी वार्षिक साधारण सभा में होता है।

5.5.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम सहकारी संगठन की निम्नलिखित स्पष्ट विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं :

1) **स्वैच्छिक संघ :** जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एक सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए समान रुचि वाले व्यक्ति एक संघ बना लेते हैं जिसको वे इच्छापूर्वक कभी भी छोड़ सकते हैं। इसके दो महत्वपूर्ण अभिप्राय हैं :

   क) कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है, चाहे उसकी जाति, मत, धर्म, रंग आदि कुछ भी हो।

   ख) सदस्य बिना किसी दबाव अथवा धमकी के संघ स्थापित करते हैं।

2) **स्वायत्तता तथा स्थायित्व :** सहकारी समिति संविधान, सामान्य नियम तथा चार्टर की सीमाओं के अंतर्गत स्वतः प्रबंध करने वाली संगठन होती है। अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत यह आत्मनिर्भर होती है, अपना नवीकरण कर सकती है तथा अपना नियंत्रण स्वयं ही करती है। कंपनी की ही भांति सहकारी संगठन का भी अपने सदस्यों से पृथक् एवं स्वतंत्र अस्तित्व होता है। इस अर्थ में इसका शाश्वत जीवन होता है जिस पर सदस्यों के आने-जाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

3) **लोकतंत्रीय प्रबंध :** सहकारी संगठन का प्रबंधन एक प्रबंधन समिति करती है जिसका निर्वाचन साधारण सभा में सदस्य एकमत के आधार पर करते हैं, चाहे उनके पास कितने ही शेयर क्यों न हों। सदस्यों की साधारण सभा ही व्यापक रूप से समिति की कार्य नीति निर्धारित करती है, जिसके अंतर्गत प्रबंधन समिति को कार्य करना होता है। इस प्रकार सहकारी समिति के प्रबंध का मुख्य आधार लोकतंत्र ही है।

4) **पूँजी :** शेयर पूँजी के रूप में पूँजी सदस्यों से ही प्राप्त की जाती है। किंतु शेयर पूँजी इसके व्यवसाय में लगी पूँजी का एक सीमित अंश ही होती है। बहुत बड़ा भाग या तो सरकार से अथवा शीर्ष सहकारी संस्था से लिया गया ऋण होता है या केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार द्वारा दिया गया अनुदान होता है।

5) **सहकारी नियंत्रण :** भारत में सभी सहकारी समितियाँ 1919 के सहकारी सोसाइटी अधिनियम अथवा अन्य राज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत होती है। सरकारी समितियों को इन्ही अधिनियमों के अंतर्गत वर्णित प्रावधानों के अनुसार कार्य करना होता है।

6) **सेवा भाव :** किसी भी सरकारी समिति का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को सेवा प्रदान करना है। इसके विपरीत जैसा कि आप जानते हैं, अन्य तीनों संगठनों का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना होता है।

5) **पूँजी पर सीमित लाभ :** सहकारी व्यवस्था में सदस्यों के बीच लाभ का विभाजन उनके द्वारा दी गई पूँजी के आधार पर किया जाता है। लेकिन, शेयरधारियों को दिए जाने वाले लाभांश की दर 9 प्रतिशत ही है जो सरकारी सोसायटी अधिनियम द्वारा निर्धारित की गई है।

6) **अधिशेष का वितरण :** साझेदारी फर्म और कंपनी संगठन में सदस्यों के बीच मुनाफा उनके द्वारा लगाई गई पूँजी के अनुपात में बाँटा जाता है। परन्तु, सहकारी समितियों में शेयरधारियों को एक सीमित दर पर लाभांश देने के बाद बचे हुए लाभ की राशि को उनके बीच बोनस के रूप में बाँट दिया जाता है। यह बोनस पूँजी के अनुपात में नहीं बाँटा जाता वरन् उसके व्यवसाय के अनुपात में बांटा जाता है जो वे समिति के

साथ करते हैं। उदाहरण के लिए, एक उपभोक्ता सहकारी समिति में समिति के सदस्यों ने समिति से जितने मूल्य की वस्तु खरीदी है उस कुल मूल्य के अनुपात में उन्हें बोनस मिलेगा। इस प्रकार उत्पादक समिति में बोनस बिक्री के लिए समिति को दी जाने वाली वस्तुओं के मूल्य के अनुपात में बाँटा जायेगा।

5.5.2 सहकारी समितियों का वर्गीकरण

समाज के विभिन्न वर्गों की भलाई के लिए सहकारी समितियाँ विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित की गई थीं। अतः विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं। इनके निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रकार हैं :

1) **उपभोक्ता सहकारी समितियाँ (Consumer Co-operatives) :** वे लोग जो दिन-प्रतिदिन काम में लाई जाने वाली घरेलू वस्तुओं को उचित मूल्य पर प्राप्त करना चाहते हैं, उपभोक्ता सहकारी समिति बना लेते हैं। इन समितियों का प्रमुख उद्देश्य सदस्यों को अनुचित व्यापारिक बुराइयों तथा तीव्रगति से होने वाली मूल्यवृद्धि से बचाना होता है। ये समितियाँ थोक व्यापारियों या उत्पादकों से बड़ी मात्रा में वस्तुएं खरीदती हैं और उन्हें अपने सदस्यों तथा कभी-कभी गैर-सदस्यों को बेचती हैं।

2) **उत्पादक सहकारी समितियाँ (Producer's Co-operatives) :** ये समितियाँ लघु औद्योगिक उत्पादकों और कारीगरों द्वारा स्थापित की जाती हैं। इनको औद्योगिक समितियाँ भी कहा जाता है। इनका प्रमुख उद्देश्य उत्पादकों व कारीगरों को शोषण से बचाना होता है। वे सदस्यों को साख की सुविधा प्रदान करती हैं, कच्चे माल दिलाती हैं, उनके उत्पाद को बाजार में बेचती हैं और अवक्रय के आधार पर सदस्यों को मशीनरी खरीदने में सहायता करती हैं।

3) **विपणन सहकारी समितियाँ (Marketing Co-operatives) :** जब उत्पादक अपने माल की बिक्री करने के उद्देश्य से सहकारी समिति स्थापित करते हैं तो उन समितियों को विपणन समिति कहा जाता है। ये समितियाँ सदस्यों को माल बेचने के समय बिचौलियों के शोषण से बचाती हैं।

4) **गृह-निर्माण सहकारी समितियाँ (Housing Co-operatives) :** ये समितियाँ प्रायः शहरी क्षेत्रों में स्थापित की जाती हैं। अपने सदस्यों को गृह-सुविधा प्रदान कराना इनकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य होता है। गृह-निर्माण समितियाँ भूमि प्राप्त करती हैं, गृह-निर्माण की योजना तैयार करती हैं, मकानों को बनाती हैं और फिर उन्हें अपने सदस्यों को सौंप देती हैं। इनमें से कुछ भूमि को केवल मकान बनाने योग्य बनाती हैं और फिर प्लाट काटकर अपने सदस्यों के बीच उनका आवंटन कर देती हैं, जो अपने मकान उन प्लाटों पर बनाते हैं। ये गृह-निर्माण के लिए उनको ऋण की व्यवस्था भी कराती हैं।

5) **उधार समितियाँ (Credit Societies) :** उधार समितियाँ उन व्यक्तियों द्वारा स्थापित की जाती है जिन्हें उधार की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की समितियाँ अपने सदस्यों को उचित ब्याज की दर पर उधार की सुविधा प्रदान करती हैं। ये समितियाँ कृषि उधार समितियों तथा गैर-कृषि उधार समितियों में वर्गीकृत की जा सकती हैं। इन समितियों को पुनः दो वर्गों में बाँटा जाता है – (i) अल्प तथा मध्यम अवधि के लिए उधार सुविधा प्रदान करने वाली समितियाँ तथा (ii) दीर्घ अवधि के लिए उधार प्रदान करने वाली समितियाँ।

गैर-कृषि उधार समितियाँ औद्योगिक इकाइयों तथा अन्य संस्थाओं के कर्मचारियों द्वारा स्थापति की जाती हैं। लघु व्यापारियों, कारीगरों तथा कम-आय वर्ग वाले व्यक्तियों,

द्वारा भी नगरों व कस्बों में उधार की आवश्यकता पूरी करने के लिए ये समितियाँ स्थापित की जाती हैं। सहकारी नगर बैंक, बचत समितियाँ, कर्मचारी उधार समितियाँ, औद्योगिक सहकारी बैंक, गृह-बंधक बैंक आदि इस श्रेणी में आते हैं।

6) **कृषि सहकारी समितियाँ (Farming Co-operatives) :** लघु कृषकों द्वारा बड़े पैमाने पर कारोबार से होने वाली बचतें प्राप्त नहीं की जा सकतीं। अतः वे सहकारी समिति का गठन करते हैं और अपने कार्यों को संयुक्त रूप से करके उनसे होने वाले लाभ को आपस में बांट लेते हैं। इस प्रकार की समितियाँ लघु व सीमांत कृषकों के लिए अत्यधिक लाभदायक होती हैं। इसके माध्यम से उन्हें बड़े पैमाने पर कारोबार के लाभ मिल जाते हैं। वे सहकारी उन्नत कृषि समिति, सहकारी काश्तकार कृषि समिति, सहकारी संयुक्त कृषि समिति, सहकारी सामूहिक कृषि समिति आदि गठित कर सकते हैं।

उपरोक्त सहकारी समितियों के अलावा भी बहुत सी अन्य प्रकार की समितियाँ स्थापित की जा सकती हैं क्योंकि सहकारिता सिद्धांत अनेक कार्यों तथा कारोबार पर भी लागू होता है। संसाधन समितियाँ, परिवहन समितियाँ, निर्माण समितियाँ, धोबियों की समितियाँ, मछुआरों की समितियाँ, तिलहन उगाने वालों की समितियाँ, डेरी समितियाँ, गन्ना उगाने वालों की समितियाँ, आदि प्रकार की सहकारी समितियाँ होती हैं। इन सब समितियों का उद्देश्य अपने सदस्यों की भलाई करना होता है।

5.5.3 गुण व सीमाएँ

विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों के अपने-अपने गुण व सीमाएँ होती हैं। परन्तु कुछ गुण तथा सीमाएँ सभी प्रकार की सहकारी समितियों में पाई जाती हैं।

गुण

1) **सुगम स्थापना :** कंपनी की स्थापना की तुलना में सहकारी समिति की स्थापना अधिक सरल होती है। सहकारी समिति स्वेच्छापूर्वक बनाया गया एक संघ होता है और उसकी स्थापना के समय बहुत अधिक और गूढ़ औपचारिकताओं को नहीं निभाना पड़ता। कोई भी 10 वयस्क व्यक्ति स्वेच्छा से अपना संघ बनाकर सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के कार्यालय में उसे पंजीकृत करा सकते हैं।

2) **सीमित दायित्व :** कंपनी जैसे संगठन की ही भांति सहकारी समितियों के सदस्यों का दायित्व भी सीमित होता है।

3) **समाज सेवा :** सहकारिता सदस्यों के बीच भाई-चारे की भावना बढ़ाती है और उनके दैनिक जीवन में नैतिक तथा शैक्षणिक मूल्यों का महत्व जगाती है जो श्रेष्ठ जीवन के लिए आवश्यक हैं।

4) **सरकारी सहायता :** सरकार ने सहकारी समितियों को अपनी आर्थिक नीति का एक अंग बना लिया है। अतः इन समितियों को कारगर ढंग से चलाने में सहायता देने के लिए सरकार अनेक प्रकार के अनुदान, ऋण तथा वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

5) **खुली सदस्यता :** सहकारी समितियों की सदस्यता सभी व्यक्यिों के लिए खुली होती है। आर्थिक स्थिति, जाति, रंग अथवा मत के आधार पर किसी भी व्यक्ति को सदस्य होने से नहीं रोका जाता है। इसमें सदस्यों की अधिकतम संख्या पर भी कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है।

6) **उचित मूल्य पर वस्तुओं की पूर्ति :** समितियाँ सीधे ही उत्पादकों से वस्तुएँ खरीदती हैं और उन्हें अपने सदस्यों को सस्ते मूल्य पर बेचती हैं। वितरण की कड़ी के बीच से

बिचौलियों को हटा दिया जाता है। उपभोक्ता सहकारी समितियाँ ऐसे समय पर अपने सदस्यों को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति कराती हैं जबकि बाजार में उसकी कमी हो जाती है। पूँजीगत माल भी (जैसे मशीनरी आदि) उत्पादकों से सीधे ही खरीदकर वे सदस्यों को बेचती हैं। इस प्रकार सहकारी समितियाँ सस्ती दर पर नियमित रूप से माल देने की व्यवस्था करती हैं।

सीमाएँ

1) **व्यावसायिक प्रतिभा की कमी :** सदस्यों को प्रायः व्यवसाय करने का अनुभव नहीं होता। अतः जब वे समिति के निदेशकमंडल के सदस्य बन जाते हैं तब समिति का कार्य संचालन प्रभावी ढंग से नहीं हो पाता। कंपनियों की भांति सहकारी समितियाँ प्रबंध-कुशलता बढ़ाने के लिए बाहर से प्रतिभाशाली तथा प्रशिक्षित व्यक्तियों को नियुक्त नहीं कर सकतीं। इसका कारण यह है कि ऐसा करना उनके उद्देश्यों तथा सीमित साधनों के अनुकूल नहीं होता।

2) **आपसी हितों का अभाव :** सदस्यों में सहकारिता का भावना कूट-कूटकर भरी होने पर ही सरकारी समिति सफल हो पाती है। परन्तु अभाग्यवश, कुछ प्रभावशाली सदस्य सहकारी समिति को अपने निजी लाभ का साधन बना लेते हैं।

3) **रुचि की कमी :** किसी भी व्यवसाय की सफलता के लिए कुछ वर्षों तक निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता होती है परन्तु बहुत सी सहकारी समितियों में इस प्रकार की स्थिति नहीं पाई जाती। अपने प्रभावशाली प्रारंभ के थोड़े समय के बाद ही सहकारी समिति जीवनहीन तथा निष्क्रिय बनकर रह जाती है।

4) **समन्वय की कमी :** इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि सदस्यों का अंदरूनी मतभेद तथा प्रतिद्वन्द्विता बहुत सी शक्ति तथा साहस को समाप्त कर देते हैं। अनेक सहकारी संस्थाओं का समाप्ति का मूल कारण समन्वय का न होना और संयुक्त रूप से कार्य न करना ही रहा है।

5) **भ्रष्टाचार :** प्रबंधन और कार्य संचालन में व्याप्त भ्रष्टाचार सहकारी संगठन की एक बहुत ही महत्वपूर्ण कमी रही है।

6) **गोपनीयता की कमी :** सहकारी समिति के कार्य प्रायः सभी सदस्यों को ज्ञात हो जाते हैं और इन समितियों के लिए व्यावसायिक कार्यों की गोपनीयता बनाए रखना कठिन हो जाता है।

7) **अपर्याप्त प्रेरणा :** पूँजी पर मिलने वाला प्रतिफल क्योंकि बहुत कम होता है, अतः सहकारी समितियों के सदस्य समिति के कार्यों में बहुत रुचि नहीं लेते।

बोध प्रश्न 4

1) बताएँ की निम्नलिखित कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

   i) सहकारी संगठनों का प्रमुख उद्देश्य लाभ कमाना होता है। ( )

   ii) सहकारी समितियों का प्रबंध पूर्ण रूप से सरकार के हाथ में रहता है। ( )

   iii) सहकारी समिति कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत निगमित की जाती है। ( )

   iv) सहकारी समितियों में प्रत्येक सदस्य समिति के साथ किए गए लेन-देन के अनुपात में बोनस पाने का हकदार होता है। ( )

v) स्त्रियाँ सहकारी समितियों की सदस्य नहीं बन सकती हैं। ( )

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) सहकारी समितियों में सदस्यों का दायित्व ..... होता है।

ii) सहकारी समिति का गठन करने के लिए कम से कम ..... सदस्य होने चाहिए।

iii) सहकारी समिति में सदस्यों की अधिकतम संख्या ..... होती है।

iv) सहकारी समिति का प्रमुख उद्देश्य ..... होता है।

v) सहकारी समिति में सदस्यों को शेयर पूँजी पर दिए जाने वाले लाभांश की अधिकतम दर ..... होती है।

5.6 सारांश

स्वामित्व के आधार पर व्यावसायिक संगठन के चार मुख्य रूप होते हैं :

1) एकल व्यपारी संगठन, 2) साझेदारी संगठन, 3) कंपनी संगठन और 4) सहकारी संगठन।

वह व्यवसाय जिसका एक ही व्यक्ति स्वामी होता हैं, वही पूँजी लगाता है और उसका ही नियंत्रण रहता है, एकल व्यापारी संगठन कहलाता है। लघु व्यवसायों के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त होता है। व्यावसायिक प्रतिष्ठान और स्वामी में कोई अन्तर नहीं रहता। नियंत्रण, गोपनीयता, स्थापना की सरलता तथा कम लागत, विघटन की सरलता और कम सरकारी हस्तक्षेप इस रूप के लाभ हैं। स्वामी की असीमित देयता, पूँजी जुटाने में कठिनाई, सीमित प्रबंधन कौशल, अस्थायी व्यावसायिक जीवन और योग्य कर्मचारियों को आकर्षित करने में कठिनाई इसके दोष हैं। साझेदारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों का संघ है जो सहस्वामी के रूप में लाभ के लिए कारोबार चलाते हैं। साझेदार के बीच प्रायः लिखित अथवा मौखिक करार होता है जिसमें प्रत्येक साझेदार द्वारा कारोबार में किए गए योगदान का उल्लेख होता है। तथा उसकी भूमिका और करार के अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डाला जाता है। साझेदारों के विभिन्न प्रकार होते हैं, जिनके आधार (क) कारोबार में भाग लेने की सीमा, (ख) लाभ में भाग, (ग) दर्शाये गये व्यवहार और आचरण की प्रकृति, और (घ) दायित्व का वहन होते हैं। साझेदारी संगठन से एकल स्वामित्व संगठन के कुछ दोष दूर हो जाते हैं। साझेदारी के लाभ हैं– अधिक पूँजी, अधिक विशिष्ट प्रबंधन, अधिक स्थायित्व, प्रमुख कर्मचारियों को अधिक प्रेरणा, आदि। साझेदारी के दोष हैं – असीमित देयता, शेयरों के हस्तांतरण में कठिनाई, स्वामियों में मतभेद की संभावना, कम समय तक चलने की संभावना, आदि।

एकल स्वामित्व तथा साझेदारी की सीमाओं के फलस्वरूप कंपनी जैसे संगठन का स्थापना हुआ। कंपनी विधि द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति होती है, इसका अपना नाम होता है, एक सार्व मुद्रा होती है तथा शाश्वत जीवन होता है। कंपनी संगठन के प्रमुख लाभ में शामिल हैं – शेयरधारियों की सीमित देयता, शेयरों की हस्तांतरणीयता, जीवन का स्थायित्व, अतिरिक्त पूँजी जुटाने में सुविधा, अधिक प्रबंधन कौशल, आदि। प्रमुख सीमाएँ हैं : स्थापना में कठिनाई और अधिक लागत, अधिक सहकारी नियमन, गोपनीयता की कमी, निर्णय लेने में शीघ्रता की कमी की संभावना, आदि।

सहकारी संगठन उन व्यक्तियों का स्वैच्छिक संघ है, जो वित्तीय दृष्टिकोण से सुदृढ़ नहीं होते तथा अपने पांवों पर खड़े नहीं हो सकते। वे लाभ कमाने के उद्देश्य से आपस में नहीं

मिलते वरन् पर्याप्त वित्तीय साधनों की कमी से उत्पन्न कठिनाई को दूर करने के लिए एकत्रित होते हैं। इसका आधारभूत उद्देश्य स्वावलंबन व आपसी सहायता करना है। सहकारी संगठन के लाभ हैं – स्थापना में सरलता, सीमित देयता, सरकारी सहायता, खुली सदस्यता आदि। सीमाएँ हैं – व्यावसायिक प्रतिभा की कमी, आपसी हितों का अभाव, गोपनीयता की कमी, सदस्यों में प्रतिस्पर्धा, आदि।

5.7 शब्दावली

सक्रिय साझेदार (Active Partner) : ऐसा साझेदार जो साझेदारी व्यवसाय के कार्यकलाप में सक्रिय रूप में भाग लेता है।

चार्टर्ड कंपनी (Chartered Company) : ऐसी कंपनी जो राजा द्वारा विशेष शाही फरमान जारी करने के फलस्वरूप स्थापित होती है।

कंपनी (Company) : व्यक्तियों का एक संघ जो कंपनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत कराया गया है। यह विधि द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति होती है, इसका अपना नाम होता है, एक सार्व मुद्रा होती है, शाश्वत जीवन होता है और सदस्यों से पृथक अस्तित्व होता है।

गारंटी द्वारा सीमित कम्पनी (Company Limited by Guarantee) : ऐसी कम्पनी जिसके सदस्यों का दायित्व उसके सीमा नियम द्वारा एक ऐसी राशि तक सीमित होता है, जिसको कम्पनी के समापन की दशा में उसकी सम्पत्ति में अंशदान करने के लिए सदस्य क्रमशः गारंटी देते हैं।

शेयरों द्वारा सीमित कम्पनी (Comapany Limited by Shares) : ऐसी कम्पनी जिसके सदस्यों का दायित्व उसके सीमा नियम के द्वारा उनके शेयरों के मूल्य तक सीमित होती है।

सहकारी संगठन (Cooperative Organisation) : व्यक्तियों का संघ जो सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अंतर्गत स्वेच्छापूर्वक गठित किया जाता है।

सामान्य साझेदार (General Partner) : साझेदारी संगठन में एक साझेदार जिसकी असीमित देयता होती है तथा जो कारोबार के संचालन में भाग लेने का अधिकार रखता है।

सरकारी कंपनी (Government Company) : ऐसी कंपनी जिसमें कम से कम 51 प्रतिशत प्रदत्त शेयर पूँजी सरकार के अधिकार में होती है।

सीमित साझेदार (Limited Partner) : ऐसा साझेदार जिसकी देयता उसके द्वारा प्रदत्त पूँजी तक ही सीमित होती है।

संयुक्त हिन्दू परिवार फर्म (Joint Hindu Family Firm) : व्यावसायिक फर्म जिसका स्वामित्व संयुक्त हिन्दू परिवार के पास होता है।

नाममात्र साझेदार (Nominal Partner) : ऐसा साझेदार जो फर्म को अपना नाम मात्र ही देता है। न तो वह फर्म में पूँजी लगाता है और न ही उसके संचालन में भाग लेता है।

साझेदार (Partner) : वह व्यक्ति जो साझेदारी फर्म का सदस्य होता है।

विबंधजात साझेदार (Partner by Estoppel) : ऐसा व्यक्ति जिसका व्यवहार तथा आचरण यह प्रदर्शित करता है कि वह फर्म में साझेदार है।

व्यपदेशनजात साझेदार (Partner by Holding Out) : यदि फर्म का कोई साझेदार किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में कहता है कि वह भी फर्म में साझेदार है और वह दूसरा व्यक्ति इस बात की जानकारी के बावजूद इनकार नहीं करता तो ऐसा व्यक्ति व्यपदेशनजात साझेदार कहलाता है।

लाभ में साझेदार (Partner in Profits) : ऐसा साझेदार जो फर्म के लाभ में भाग लेता है परन्तु हानि में नहीं।

साझेदारी करार (Partnership Agreement) : साझेदारों के बीच लिखित अथवा मौखिक करार जिसमें साझेदारों का गठन, नियम तथा विनियम का उल्लेख होता है।

साझेदारी विलेख (Partnership Deed) : साझेदारी का एक लिखित करार जिस पर विधिवत मुहर लगी होती है और जो पंजीकृत भी होती है।

साझेदारी संगठन : कारोबार का लाभ बाँटने के लिए दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों का संगठन जो सभी के द्वारा अथवा सबके लिए किसी एक द्वारा संचालित होता है।

प्राइवेट लिमिटेड कंपनी (Private Limited Company) : ऐसी कंपनी, जो अपने अंतर्नियम द्वारा (क) अपने सदस्यों की अधिकतम संख्या 200 तक सीमित रखती है (ख) अपने शेयरों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगाती है तथा (ग) जनता द्वारा शेयर तथा ऋण पत्र लेने पर रोक लगाती है।

पब्लिक लिमिटेड कंपनी (Public Limited Company) : ऐसी कंपनी जो प्राइवेट लिमिटेड कंपनी नहीं होती।

पंजीकृत कंपनी (Registered Company) : कंपनी अधिनियम के अंतर्गत निगमित कंपनी।

सुप्त साझेदारी (Sleeping Partner) : साझेदारी फर्म में साझेदार जो फर्म के कारोबार में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता।

एकल स्वामित्व संगठन (Sole Proprietorship) : एक व्यक्ति का व्यवसाय जिसमें व्यक्ति अपनी पूँजी, कौशल और बुद्धि लगाता है, सम्पूर्ण लाभ पाता है और स्वामित्व का जोखिम वहन करता है।

सांविधिक कंपनी (Statutory Company) : संसद अथवा विधान सभा के विशेष अधिनियम द्वारा संस्थापित कंपनी।

असीमित देयता कंपनी (Unlimited Company) : ऐसी कंपनी जिसमें सदस्यों की देयता असीमित होती है।

5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i) असीमित (ii) स्वामी (iii) लघु (iv) एक (v) स्वामी

2) (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) गलत

बोध प्रश्न 2

1) (i) 50 (ii) असीमित (iii) सुप्त (iv) दो (v) भागीदारी विलेख (vi) विबँधजात साझेदार (vii) सीमित साझेदार।

2) (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत (vii) गलत (viii) सही

बोध प्रश्न 3

1) (i) सात, असीमित (ii) 2, 200 (iii) सीमित (iv) 51 (v) असीमित (vi) सांविधिक

2) (i) सही (ii) गलत (iii) गलत (iv) सही (v) गलत (vi) गलत (vii) सही (viii) गलत

बोध प्रश्न 4

1) (i) गलत (ii) गलत (iii) गलत (iv) सही (v) गलत

2) (i) सीमित (ii) दस (iii) असीमित (iv) स्वावलंबन व आपसी सहायता (v) 9 प्रतिशत

5.9 स्वपरख प्रश्न

1) एकल व्यापारी संगठन क्या है? एकल व्यापारी संगठन के गुणों व सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
2) साझेदारी संगठनों का स्थापना मुख्य रूप से एकल स्वामित्व संगठनों की सीमाओं (दोषों) तथा असफलताओं के कारण ही हुआ। स्पष्ट कीजिए।
2) साझेदारी क्या है? संयुक्त स्टॉक कंपनी से यह किस प्रकार भिन्न होती हैं?
3) संयुक्त स्टॉक कंपनी क्या है? अनिगमित संगठनों की सीमाओं को यह कैसे दूर कर पाती है?
4) सहकारी संगठन की विशेषताएं बताइए। यह किन बातों में कंपनी से भिन्न होता है?
5) सहकारी संगठन के रूप के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं? उसके गुणों और सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 6 व्यावसायिक संगठन के रूप-II

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 आदर्श व्यावसायिक संगठन के आवश्यक गुण

6.3 संगठन के विभिन्न रूपों की तुलना

6.4 संगठन के चुनाव का मापदंड

6.4.1 व्यवसाय प्रारम्भ करते समय मापदंड

6.4.2 विस्तार के समय मापदंड

6.5 संगठन के रूप का चुनाव

6.6 सामाजिक उद्यम

6.7 सारांश

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 स्वपरख प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के लक्षण बता सकें;
- व्यावसायिक संगठन के चार रूपों की तुलना कर सकें; तथा
- व्यावसायिक संगठन के रूप का चुनाव कर सकें।

6.1 प्रस्तावना

इकाई 5 में आपने पढ़ा था कि व्यावसायिक संगठन के चार रूप होते हैं – (i) एकल स्वामित्व, (ii)साझेदारी (iii)संयुक्त स्टॉक कंपनी, तथा (iv) सहकारी समिति। आपने इन चारों रूपों के गुणों तथा सीमाओं के विषय में भी जान लिया है।

एकल स्वामित्व तथा साझेदारी नियंत्रण, गोपनीयता अभिप्रेरण, स्थापना की सुगमता तथा कम लागत की दृष्टि से अधिक लाभकारी होते हैं, किंतु सीमित साधन, सीमित प्रबंधन कुशलता तथा असीमित दायित्व इनकी मुख्य कमियाँ हैं। दूसरी ओर, अधिक साधन, सीमित दायित्व तथा नानाविध प्रबंधन-कुशलता कंपनी संगठन के लाभ हैं।

जब आप एक नया व्यवसाय आरंभ करने की योजना बनाते हैं, तब आपको यह निर्णय करना होता है कि प्रस्तावित व्यवसाय के लिए संगठन का कौन सा रूप अधिक उपयुक्त है। इसके लिये आपको प्रस्तावित व्यवसाय की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए संगठन के चारों रूपों में से प्रत्येक की उपयुक्तता का समालोचनात्मक विश्लेषण करना होगा। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय है, क्योंकि यह उद्यमकर्त्ता की शक्ति तथा उत्तरदायित्व और लाभ-हानियों के विभाजन का निर्धारण करता है। एक बार इसका चुनाव हो जाने के बाद इसे बदलना अत्यन्त कठिन तथा खर्चीला होता है। इस इकाई में आप संगठन के एक अच्छे रूप के आवश्यक गुणों के विषय में पढ़ेंगे, संगठन के चार रूपों की तुलना करेंगे, संगठन के रूप

के चुनाव को प्रभावित करने वाले तत्वों का विश्लेषण करेंगे तथा यह निर्णय करेंगे कि स्थिति विशेष में कौन सा रूप सबसे उपयुक्त है।

6.2 आदर्श व्यावसायिक संगठन के आवश्यक गुण

इस बात का विवेचन करने के पूर्व कि किसी विशेष परिस्थिति में व्यवसाय के एक विशेष रूप का चुनाव किस प्रकार किया जाए, हमारे लिये यह जानना आवश्यक है कि संगठन के एक आदर्श रूप के आवश्यक गुण क्या हैं। इसमें हमें व्यवसाय के प्रत्येक रूप का सही मूल्यांकन करने तथा एक विशेषज्ञ रूप के उचित चुनाव का अंतिम निर्णय करने में सहायता मिलेगी। संगठन के एक आदर्श रूप के आवश्यक गुण निम्नलिखित होते हैं।

1) **स्थापना की सुगमता (Ease of Formation) :** संगठन के किसी एक विशेष रूप को दूसरे पर तरजीह देने का एक प्रमुख कारण उस व्यवसाय को स्थापित करने की सुगमता होती है। संगठन के एक विशेष रूप की स्थापना की तुलनात्मक सुगमता अथवा कठिनाई मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर करती है। (i) पंजीकरण-शुल्क, स्टांप-शुल्क, कानूनी विशेषज्ञों की फीस, प्रलेखों के प्रारूप बनाने का खर्च, लाइसेंस प्राप्त करने का खर्च, स्थापना संबंधी व्यय आदि, (ii) कानूनी औपचारिकताएँ, तथा (iii) क्रियाविधि संबंधी विलम्ब। जब तक अत्यन्त अनिवार्य न हो, ऐसे संगठन का चुनाव अच्छा होता है जिसकी स्थापना सुगमतापूर्वक की जा सकती है।

2) **पूँजी जुटाने का अवसर (Scope of raising Capital) :** संगठन का पंसद मुख्य रूप से आवश्यक पूँजी की मात्रा पर निर्भर करती है जो व्यापार के स्वरूप और संचालन के पैमाने से निर्धारित होती है। उदाहरणार्थ, यदि आप किराने का दुकान खोलना चाहते हैं तब अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु यदि आप एक चीनी मिल लगाना चाहते हैं तब आपको पूँजी की एक बड़ी राशि की आवश्यकता होगी। संगठन का आदर्श रूप वह है जो यथासमय आवश्यकतानुसार पूँजी जुटाने के अवसर प्रदान करता हो।

3) **देयता की सीमा (Extent of liability) :** आप जानते हैं कि प्रत्येक व्यवसाय में जोखिम तथा अनिश्चितता का तत्व होता है। इस दृष्टि से, सामान्यतः व्यवसाय सीमित देयता पसन्द करते हैं। अतः सीमित देयता को एक अच्छे प्रकार के संगठन का महत्वपूर्ण लक्षण माना जाता है। किन्तु व्यवसाय में पहल शक्ति लगाव और प्रेरणा के लिए कुछ जोखिम भी आवश्यक होता है। कई बार इस प्रकार की प्रेरणा का अभाव प्रबन्धन कार्मिकों में दुर्बलता, अकुशलता तथा बेईमानी तक का कारण बन सकता है।

4) **कारोबार में लचीलापन (Flexibility of operations) :** संगठन का रूप बहुत लचीला होना चाहिए तथा बिना किसी कठिनाई अथवा जटिलता के, बदलती हुई व्यावसायिक स्थितियों के अनुसार परिवर्तनशील होना चाहिये। उदाहरण के लिए, यदि आप अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहते हैं अथवा संयंत्रों और उपस्करों का आधुनिकीकरण करना अथवा उसमें विविधता लाना चाहते हैं, तो संगठन को सब अपेक्षाओं को पूर्ण करने में सक्षम होना चाहिये।

5) **स्थायित्व तथा निरंतरता (Stability and continuity) :** स्वामियों, कर्मचारियों तथा ग्राहकों के हित में व्यवसाय का स्थायित्व तथा लम्बा जीवन अभीष्ट है। कर्मचारी सदा स्थायी तथा निरंतर रोज़गार पसंद करते हैं। यदि व्यवसाय स्थायी है तो स्वामी भविष्य के लिये योजना बना सकेगा, तथा लम्बे समय तक आय प्रदान करने वाले निवेश कर सकेगा। ग्राहकों की दृष्टि से भी, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये माल और सेवाओं की नियमित पूर्ति अपेक्षित है। संगठन का एक आदर्श रूप वह है जो व्यवसाय को उचित मात्रा में स्थायित्व प्रदान करता है।

6) **प्रबंधन की क्षमता (Effectiveness of management) :** जैसा कि आप जानते हैं, किसी भी व्यवसाय की सफलता प्रबंधन की कार्यकुशलता पर निर्भर होती है। प्रबंधन की कार्यकुशलता, उसके नैपुण्य, अभिप्रेरण, लचीलेपन तथा अनुकूलनीयता पर निर्भर होती है। किसी एक व्यक्ति में इन समस्त गुणों का होना कठिन है।

7) **सरकारी नियंत्रण व विनियमों की सीमा (Extent of government control and regulations) :** यदि सरकारी नियंत्रण तथा विनियम बहुत अधिक है, तो उद्यम को कानूनी औपचारिकताओं तथा अनुदेशों को पूरा करने में पर्याप्त समय, धन और शक्ति व्यय करनी पड़ेगी। कुछ स्थितियों में सरकारी पदाधिकारियों द्वारा फर्म के रोजमर्रा के कार्यो में अत्यधिक हस्तक्षेप हो सकता है। यह सच है कि जिन व्यावसायिक उद्यमों के कार्यों का समुचित रूप से सरकारी नियमन होता है उन पर निवेशकर्त्ताओं, लेनदारों तथा ग्राहकों का अधिक विश्वास होता है। किन्तु अत्याधिक सरकारी हस्तक्षेप उद्यमकर्त्ताओं द्वारा पसंद नहीं किया जाता क्योंकि यह उनकी पहल शक्ति को क्षति पहुँचाता है तथा उसके व्यवसाय के चलने में बाधा डालता है।

8) **व्यावसायिक गोपनीयता (Business Secrecy) :** व्यवसाय में यह आवश्यक होता है कि व्यवसाय के रहस्यों को प्रतियोगियों से गुप्त रखा जाए। अतः संगठन के एक ऐसे रूप को, जो व्यावसायिक रहस्यों को गुप्त रखने में सहायक हो, उस रूप से अच्छा माना जाता है जिसमें व्यावसायिक रहस्यों को गुप्त रखना कठिन हो।

9) **कर-भार (Tax burden) :** बिक्रीकर, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क जैसे व्यावसायिक कर कुछ विशेष उत्पादों तथा सेवाओं पर लगाए जाते हैं। अतः ऐसे करों का प्रभाव संगठन के प्रत्येक रूप पर एक-सा पड़ता है तथा इन रूपों के बीच चुनाव का इनका कोई प्रभाव नही पड़ता। किन्तु संगठन के विभिन्न रूपों के लिये आय-कर देयता अलग-अलग होती है। अतः यह स्वाभाविक है कि संगठन के उस रूप को आदर्श माना जाए जिसकी आय-कर-देयता सबसे कम हो। इस दृष्टि से संयुक्त स्टॉक कंपनी संगठन को आदर्श माना जाता है क्योंकि इसे कर में बहुत सी राहतें मिलती हैं जो संगठन के अन्य रूपों में उपलब्ध नहीं होतीं।

10) **स्वामित्व के परमाधिकार (Ownership Prerogatives) :** कुछ व्यक्तियों की प्रबल इच्छा होती है कि वे समस्त व्यावसायिक क्रियाकलाप को स्वयं नियंत्रित करें। वे निजी नेतृत्व को अधिक महत्व देते हैं। कुछ लोग व्यवसाय के उत्तरदायित्वों तथा जोखिमों को दूसरों के साथ बाँटना चाहते हैं। कुछ लोग व्यावसायिक कार्यों पर नियंत्रण की प्रबल इच्छा के बिना पूँजी के एक भाग का स्वामित्व चाहते हैं। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो व्यावसायिक जोखिम उठाने को तैयार नहीं होते हैं। संगठन का एक आदर्श रूप स्वामियों के ऐसे परमाधिकारों का ध्यान रखता है।

6.3 संगठन के विभिन्न रूपों की तुलना

आपने पढ़ा है कि एक आदर्श संगठन में स्थापना की सुगमता, सीमित देयता, पर्याप्त पूँजी जुटाने का अवसर, व्यावसायिक गोपनीयता, लचीलापन, व्यवसाय का स्थायित्व, सरकारी नियंत्रण, कम कर देयता आदि लक्षण होने चाहिये। आप जानते हैं कि संगठन के चार प्रमुख रूप हैं। ये हैं : (1) एकल स्वामित्व, (2) साझेदारी, (3) कंपनी, तथा (4) सहकारी समिति। संगठन के एक आदर्श रूप के लिए आवश्यक उपर्युक्त लक्षणों को ध्यान में रखते हुए, हम संगठन के इन चारों रूपों के लक्षणों की तुलना करेंगे। ऐसी तुलना द्वारा, सम्भवतः हम संगठन के उस रूप को पहचान पाएंगे जिसमें ये समस्त आदर्श लक्षण हों। तालिका 6.1 देखिये तथा व्यावसायिक संगठन के चार रूपों के लक्षणों की तुलना कीजिए।

तालिका 6.1 : संगठन के विभिन्न रूपों का तुलनात्मक अध्ययन

क्र. सं.	तुलना का आधार	एकल स्वामित्व	साझेदारी	प्राइवेट लिमिटेड कंपनी	पब्लिक लिमिटेड	सरकारी संगठन
1	स्थापना	सबसे सुगम, किसी प्रकार की कानूनी औपचारिकता आवश्यक नहीं	अत्यंत सुगम, कोई कठोर कानूनी औपचारिकताएँ नहीं	कानूनी औपचारिकताओं के कारण कठिन	बहुत सी कानूनी औपचारिकताओं के कारण काफी कठिन	कुछ कानूनी औपचारिकताएँ आवश्यक
2	विशिष्ट नियमन	कोई नहीं	भारतीय भागीदारी अधिनियम 1932	कम्पनी अधिनियम 1956	कम्पनी अधिनियम 1956	सहकारी सोसइटी अधिनियम 1912
3	कानूनी हैसियत	कोई अलग कानूनी हैसियत नहीं	कोई अलग कानूनी हैसियत नहीं	अलग कानूनी हैसियत	अलग कानूनी हैसियत	अलग कानूनी हैसियत
4	सदस्यता	एक स्वामी	कम से कम 2, अधिक से अधिक 50	कम से कम 2, अधिक से अधिक 200	कम से कम 7, अधिकतम कोई सीमा नहीं	कम से कम 10, अधिकतम कोई सीमा नहीं
5	पूँजी	अत्यंत सीमित पूँजी	सीमित पूँजी	अधिक पूँजी	पूँजी की कितनी भी राशि जुटाई जा सकती है	प्रचुर साधन उपलब्ध नहीं
6	प्रबंध तथा स्वामित्व	स्वामी द्वारा प्रबंध	स्वामियों द्वारा प्रबंध	नियंत्रण, जोखिम तथा स्वामित्व साथ-साथ	प्रबंध तथा स्वामित्व पूर्णतः अलग-अलग	सभी सदस्यों द्वारा प्रबंध नहीं
7	प्रबंध कुशलता	अत्यंत सीमित प्रबंध कुशलता	सीमित प्रबंध कुशलता	प्रबंध कुशलता की गुंजाइश	बहुत अधिक प्रबंध कुशलता की गुंजाइश	प्रबंध कुशलता की गुंजाइश
8	स्वामी का दायित्व	असीमित	असीमित	सीमित	सीमित	सीमित उपनियमों के अनुसार
9	लाभ विभाजन का आधार	सारा लाभ स्वामी को प्राप्त	करार के अनुसार साझेदारों में विभाजन	स्वामियों में उनके शेयरों के आधार पर विभाजन	स्वामियों के उनके शेयरों के आधार पर विभाजन	प्रत्येक सदस्या द्वारा किए गए व्यवसाय की मात्रा
10	स्वामित्व का अंतरण	इच्छानुसार तथा अपेक्षाकृत आसान	सीमित तथा अपेक्षाकृत कठिन	सीमित तथा अपेक्षाकृत कठिन	इच्छानुसार तथा अति सुगम	सीमित
11	व्यावसायिक स्थायित्व	स्वामी के जीवन पर निर्भर	साझेदारों के जीवन, दिवालियापन तथा निवृत्ति पर निर्भर	शाश्वत अस्तित्व, सदस्यों की मृत्यु, दिवालियापन का इसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता	शश्वत अस्तित्व, सदस्यों की मृत्यु, दिवालियापन का इसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता	इसके सदस्यों की मृत्यु दिवालियापन का इसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता
12	व्यावसायिक रहस्य	पूर्ण गोपनीयता	रहस्य साझेदारों तक सीमित	रहस्य सदस्यों तक सीमित	जनता को ज्ञात	सदस्यों को ज्ञात
13	सहकारी नियमन	लगभग नहीं	बहुत कम	पर्याप्त नियमन	अत्यधिक नियमन	पर्याप्त नियमन

14	कर-भार	कोई विशेष आयकर नहीं	कोई विशेष आयकर नहीं	भारी कर-भार, आय पर दोहरा कर	भारी कर–भार, आय पर दोहरा कर	आयकर में छूट
15	लचीलापन	यह लचीला संगठन है, इसमें लिखित दस्तावेजों की आवश्यकता नहीं होती	इसे केवल सभी साझेदारों की सहमति से बदला जा सकता है। इसमें साझेदारी विलेख की आवश्यकता होती है जिसे सारे साझेदारों की सहमति से ही बदला जा सकता है।	यह लचीला संगठन है	यह एक लोचनीय संगठन है। इसके लोचहीन को बदलना कठिन है। इसे सरकार की अनुमति से बदला जा सकता है।	यह एक लोचनीय संगठन है। इसके लोचहीन को बदलना कठिन है। इसे सरकार की अनुमति से बदला जा सकता है।
16	लेखों का अंकेक्षण	आवश्यक नहीं	आवश्यक नहीं	अनिवार्य	अनिवार्य	अनिवार्य
17	समापन	इच्छानुसार	इच्छानुसार	अधिनियम के अनुसार	अधिनियम के अनुसार	अधिनियम के अनुसार

यदि आप तालिका 6.1 का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि संगठन के किसी भी रूप में समस्त आदर्श गुण नहीं हैं। संगठन के प्रत्येक रूप में इनमें से कुछ गुण मिल जाएँगें। प्रत्येक रूप कुछ दृष्टि से अच्छा होता है, परन्तु दूसरी दृष्टि से अच्छा नहीं होता। उदाहरणार्थ, एकल स्वामित्व तथा साझेदारी, स्थापना की सुगमता, सरकारी नियमन से मुक्ति, स्वामित्व के हित, व्यावसायिक रहस्यों की गोपनीयता आदि दृष्टि से अच्छे माने जाते हैं। किन्तु ये गुण कंपनी तथा सहकारी संगठनों में नहीं पाये जाते। सीमित देयता, पूँजी जुटाने के अवसर, पेशेवर प्रबंधन, जीवन की निरंतरता आदि की दृष्टि से कंपनी तथा सहकारी संगठन आदर्श माने जाते हैं। अतः संगठन के किसी भी रूप को हर प्रकार से आदर्श तथा हर स्थिति के लिए उपयुक्त मानना कठिन है।

बोध प्रश्न 1

1) व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के गुणों की सूची बनाइये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) बताएँ कि निम्न कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

i) संगठन का आदर्श रूप वह होता है जिसकी स्थापना के समय जटिल कानूनी औपचारिकताएं होती हैं। ( )

ii) असीमित देयता संगठन के एक आदर्श रूप का महत्वपूर्ण गुण है। ( )

iii) संगठन लचीला तथा व्यवसाय की बदलती हुए परिस्थितियों के लिए अनुकूल परिवर्तनीय होना चाहिये। ( )

iv) अत्याधिक सरकारी नियंत्रण को आदर्श नहीं माना जाता। ( )

v) संगठन का आदर्श रूप वह है जो व्यवसाय के स्थायित्व तथा उसके निरंतर जीवन को सुनिश्चित कर सके। ( )

vi) व्यावसायिक रहस्यों को गुप्त रखना संगठन के अच्छे रूप का आवश्यक गुण हैं। ( )

vii) संगठन का वह रूप वांछनीय होता है जिस पर अधिक कर-भार लगाया जाता है। ( )

3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :

i) स्थापना की दृष्टि से ..... सबसे सुगम तथा सबसे कठिन होती है।

ii) स्वामियों की सदस्यता में सबसे अधिक तथा ..... में सबसे कम होती है।

iii) ..... में पूँजी जुटाने के अवसर बहुत सीमित होते हैं।

iv) संगठन का .....रूप आय कर से मुक्त होता है।

v) ..... रूपों में स्वामियों का दायित्व असीमित होता है।

vi) व्यावसायिक रहस्य ..... में गुप्त रहते हैं।

vii) ..... रूप में सरकारी नियमन सर्वाधिक होता है।

viii) ..... रूप में व्यावसायिक रहस्य अधिकतर गुप्त नहीं रह पाते हैं।

6.4 संगठन के चुनाव का मापदंड

चारों रूपों की तुलना करने पर हमने पाया कि उनमें से कोई भी सभी दृष्टियों से आदर्श नहीं है। इसमें से प्रत्येक रूप कुछ दृष्टियों से अच्छा है लेकिन कुछ दृष्टियों से अच्छा नहीं है। अतः संगठन के एक सर्वोत्तम रूप की तलाश ऐसी है जैसा कि एक कमीज की तलाश जो परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए उपयुक्त हो। हो सकता है कि संगठन का कोई एक रूप एक स्थिति में तो उपयुक्त है लेकिन दूसरी स्थितियों में उपयुक्त न हो। संगठन का सर्वोत्तम रूप वह है जो किसी विशेष व्यवसाय की आवश्यकताओं को सन्तोषजनक ढंग से पूरा करता हो। चुनाव का मुख्य आधार उद्यमकर्त्ता द्वारा निश्चित किये गए उद्देश्यों की पूर्ति होता है। चूंकि उद्देश्य अलग-अलग व्यवसाय के लिए अलग-अलग होते हैं, अतः संगठन का कोई भी रूप प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं माना जा सकता। अब हम विश्लेषण करेंगे कि वे कौन से तत्व हैं जो व्यावसायिक संगठन के रूप के चुनाव में हमारी सहायता करते हैं। संगठन के चुनाव से संबंधित निर्णय व्यवसाय के दो स्तरों पर महत्वपूर्ण होता है :

क) व्यवसाय प्रारम्भ करते समय

ख) व्यवसाय के विस्तार के समय

6.4.1 व्यवसाय प्रारम्भ करते समय मापदंड

एक नया व्यावसायिक उद्यम प्रारम्भ करते समय व्यावसायिक संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि संगठन का रूप ही अन्ततः उद्यमकर्त्ता की शक्ति और उत्तरदायित्व का निर्धारण करता है। चुनाव निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करता है।

1) **व्यवसाय की प्रकृति :** संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव प्रस्तावित व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करता है। विभिन्न व्यवसायों की संगठनात्मक आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। उदाहरणार्थ, एक बड़ी सीमेण्ट उत्पादन इकाई तथा सीमेण्ट बेचने वाली एक फुटकर दुकान के लिए संगठन का एक-सा रूप उपयुक्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार एक कपड़ा मिल के लिए उपयुक्त संगठन का एक दर्जी की दुकान के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता।

2) **व्यवसाय का परिमाण :** व्यवसाय का अनुमानित परिमाण भी संगठन के उन उपयुक्त रूप के निर्णय को प्रभावित करता है। यदि व्यवसाय का परिमाण छोटा है, तो आपको कम पूँजी की आवश्यकता होगी तथा कम जोखिम उठाना पड़ेगा। इसी स्थिति में एकल स्वामित्व उपयुक्त हो सकता है। किन्तु, यदि व्यवसाय का परिणाम बड़ा है तो आपको अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी और अधिक जोखिम उठाना पड़ेगा जो किसी अकेले स्वामी के लिए कठिन होगा। अतः साझेदारी अथवा कंपनी अधिक उपयुक्त मानी जाएगी।

3) **कारोबार का क्षेत्र :** कारोबार का क्षेत्र भी संगठन के रूप के चुनाव को प्रभावित करता है। यदि क्षेत्र सीमित है तथा एक विशेष इलाके में ही है तो एकल स्वामित्व संगठन का उपयुक्त रूप हो सकता है। किन्तु यदि क्षेत्र विस्तृत है तो संयुक्त स्टॉक कंपनी उपयुक्त रूप होगी।

4) **नियंत्रण की कामना :** नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण की मात्रा भी संगठन के चुनाव का निर्धारण करेगी। यदि व्यावसायिक कार्यों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण की कामना है तो एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी अपनाई जानी चाहिये। यदि आप समझते हैं कि प्रत्यक्ष नियंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं है तो संगठन का कंपनी रूप सर्वोत्तम होगा।

5) **पूँजी संबंधी आवश्यकताएँ :** संगठन का रूप व्यवसाय की पूँजी संबंधी आवश्यकताओं पर भी निर्भर होगा। ऐसा व्यवसाय जिसमें कम पूँजी की आवश्यकता है एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी के आधार पर संगठित किया जा सकता है। किन्तु यदि वित्तीय आवश्यकताएं बहुत अधिक हैं तो संगठन का संयुक्त स्टॉक कंपनी रूप ही उचित रहेगा।

6) **जोखिम तथा देयता की मात्रा :** आप जानते हैं कि व्यावसायिक कार्यों में जोखिम होता है। यदि व्यावसायिक उद्यम के प्रवर्तक उसके जोखिम से डरते हैं तो व्यवसाय को सीमित देयता वाले संगठन के आधार पर आरम्भ करेंगे, अर्थात् वे एक कंपनी बनाएँगे। किन्तु जोखिम उठाने की क्षमता है तो वे व्यवसाय को एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी के आधार पर संगठित कर सकते हैं।

7) **सरकारी विनियम :** आप जानते हैं सरकारी नियंत्रण और विनियम संगठन के कंपनी तथा सहकारी रूपों में अन्य दो रूपों की अपेक्षा अधिक होते हैं। अतः यदि आप बहुत अधिक सरकारी नियंत्रण तथा विनियम नहीं चाहते तो आपको एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी को चुनना चाहिए।

6.4.2 विस्तार के समय मापदंड

व्यवसाय में वृद्धि एक सामान्य क्रिया है। जब आपका व्यवसाय सफल होता है तो आप उसका विस्तार करने की योजना बना सकते हैं। विस्तार कार्यक्रम के निम्नलिखित आशय हो सकते हैं :

i) बड़े पैमाने पर वित्तीय साधनों की आवश्यकता

ii) आन्तरिक पुनर्गठन तथा नियंत्रण की आवश्यकता

iii) विशिष्ट सेवाओं, जैसे – संचार, लेखाविधि, विपणन आदि की आवश्यकता

iv) सरकारी नियंत्रण और विनियमों में वृद्धि

v) करदेयता में वृद्धि

vi) नियंत्रण तथा समन्वय की समस्या में वृद्धि

वास्तव में इन समस्याओं का स्वरूप वर्तमान व्यवसाय की प्रकृति तथा अपनाये गए विस्तार कार्यक्रमों के रूप पर निर्भर होगा। अपना विस्तार कार्यक्रम कार्यान्वित करने के लिए आप संगठन के वर्तमान रूप से काम चला सकते हैं, अथवा संगठन का एक नया रूप अपना सकते हैं। आप जिस किसी विकल्प को चुनें, उसे विस्तार की समस्त आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ होना चाहिये। यदि आपका वर्तमान व्यवसाय एकल स्वामित्व संस्था के रूप में संगठित है तो आप एक प्रबंधक नियुक्त कर सकते हैं अथवा कोई साझेदार बना सकते हैं। यदि कोई साझेदारी फर्म है तो आप साझेदारों की संख्या बढ़ा सकते हैं, अथवा इसे प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। इसी प्रकार, यदि वर्तमान व्यवसाय प्राइवेट कंपनी के रूप में संगठित है तो आपके पास यह विकल्प है कि आप चाहे तो पब्लिक लिमिटेड कंपनी में बदल दें अथवा न बदलें।

6.5 संगठन के रूप का चुनाव

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि छोटे-छोटे व्यवसाय, जैसे किराने की दुकानें, नाई की दुकान, छोटे भोजनालय तथा होटल, छोटे ऑटोवर्कशाप, लेखन सामग्री की दुकानें, मिठाई की दुकानें, ड्राइक्लीनिंग की दुकानें, जूता निर्माता और विक्रेता, बिजली तथा इलैक्ट्रॉनिक के सामान की मरम्मत करने वाली छोटी दुकानें, नाई, दर्जी, आदि प्रधानतः एकल व्यापार संगठन होते हैं। इस प्रकार के व्यवसायों के लिए संगठन के एकल स्वामित्व रूप को तरज़ीह देने के कारण बिल्कुल स्पष्ट है। वे छोटे पैमाने पर कार्य करते हैं, एक सीमित बाजार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं अथवा ग्राहकों या व्यापारियों की सीमित संख्या से व्यवहार करते हैं, तथा उन्हें सीमित पूँजी की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त इनमें आमने-सामने की स्थिति से निपटने के लिए स्वामियों के वैयक्तिक ध्यान की आवश्यकता होती है। प्रबन्धकीय कार्य स्वामी स्वयं ही सुगमतापूर्वक कर सकता है तथा सामान्यतः स्वामी स्वयं ही अपना मालिक तथा सक्रिय प्रबन्धक होना चाहता है।

अपेक्षाकृत बड़े पैमाने पर व्यवसाय का गठन सामान्यतः साझेदारी फर्म के रूप में किया जाता है। सेवा उद्यम जैसे ऑटोवर्कशाप, बड़े भोजनालय तथा होटल, बड़े पैमाने के फुटकर व्यापार तथा मध्यम पैमाने के औद्योगिक संगठन जैसे सामान्यतः साझेदारी के रूप में गठित किये जाते हैं। इनमें उद्यमकर्त्ता एक फर्म के साझेदार के रूप में अपनी पूँजी, कौशल तथा अनुभव को एक साथ जुटाकर कार्य करते हैं। ऐसे उपक्रमों के आन्तरिक संगठन की देखभाल वे साझेदार करते हैं, जिसमें उपक्रम की किसी विशेष क्रिया में विशेषज्ञता प्राप्त हो।

उन उपक्रमों में जिनमें जोखिम काफी अधिक होता है तथा जिनमें मध्यम पैमाने पर कार्य होता है सामान्यतः प्राइवेट लिमिटेड कंपनी का चुनाव किया जाता है। परिवहन उपक्रम, अवक्रय इकाइयाँ, वित्त तथा लीजिंग कंपनियाँ, मध्यम पैमाने की विनिर्माण कंपनियाँ सामान्यतः प्राइवेट कंपनियों के रूप में गठित की जाती हैं। ऐसे उपक्रमों में साझेदारी फर्म की तुलना में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

वर्तमान समय के बड़े पैमाने पर व्यावसायिक कार्यों के लिए पब्लिक लिमिटेड कंपनी व्यावसायिक संगठन का सबसे उपयुक्त रूप है। बड़े पैमाने के विनिर्माण संयंत्र, बड़े परिवहन उपक्रम इंजीनियरी तथा इलैक्ट्रानिक कंपनियाँ, बड़े विभागीय भंडार , दुकानें आदि सामान्यतः पब्लिक लिमिटेड कंपनी के रूप में संगठित की जाती हैं। इसके मुख्य कारण हैं बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता, तथा बड़े जोखिम का होना।

दूसरी ओर, संगठन का सहकारी रूप उस स्थिति में उपयुक्त होता है जबकि समाज के किसी एक विशेष वर्ग के हितों की रक्षा करनी हो। अतः संगठन के सहकारी रूप का उपयोग उपभोक्ताओं, उत्पादकों, कृषकों, आदि के लिये किया जाता है।

6.6 सामाजिक उद्यम

सामाजिक उद्यम की स्थापना समाज के विकास के लिए किया गया है। ये उद्यम शिक्षा, प्रशिक्षण, बेरोजगारी, महिलाओं का सशक्तिकरण, गरीबी, असमानता आदि मुद्दाओं के लिए कार्य करने में शामिल हैं।

कौशल और उद्यमिता मंत्रालय भारत सरकार के राष्ट्रीय उद्यमिता नीति 2015 के अनुसार ''सामाजिक उद्यम गरीबी, बेरोजगारी, समाज में असमानता के मुद्दों को नवीन सामाजिक व्यवसाय प्रक्रिया के द्वारा संबोधित करता है। सामाजिक नवीन प्रक्रिया वस्तुओं और सेवाओं को प्रस्तुत करके इन सामाजिक समस्याओं का उत्तर खोजता है जो गरीब लोगों को बाजार से अंतःक्रिया करने का मौका देता है ताकि वे निष्क्रिय प्राप्तकर्ताओं के स्थान पर बाजार का सक्रिय सहभागी बनें''।

उपर्युक्त नीति से यह स्पष्ट होता है कि:

i) सामाजिक उद्यम एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक क्रिया प्रणाली के रूप में उभर कर आया है।

ii) ये उद्यम गरीबी, बेरोजगारी और असमानता के मुद्दों को संबोधित करने में शामिल हैं।

iii) ये नवीन सामाजिक व्यवसाय के प्रक्रिया में प्रतिबद्ध है।

iv) सामाजिक नवीन प्रक्रिया का उपयोग सामाजिक समस्याओं का उत्तर खोजने के लिए किया जाता है।

v) ये नए वस्तुएँ और सेवाओं को प्रदान करते हैं जो समाज के समस्याओं को संबोधित करने में मदद करता है।

vi) सामाजिक उद्यम मुख्य रूप से सामाजिक कार्य करते हैं इसलिए समाज को सामाजिक उद्यम के साथ अंतःक्रिया का मौका मिलता है। इस प्रकार वे सक्रिय सहभागी बन सकते हैं।

यू के सरकार ने सामाजिक उद्यम को इस प्रकार परिभाषित किया है। ''वैसा व्यवसाय जो मुख्य रूप से सामाजिक उद्देश्यों का पालन करते हैं और उनका अधिशेष मुख्य रूप से व्यवसाय के उद्देश्य या समुदाय के लिए पुनर्निवेश कर दिया जाता है। यह अंशधारियों या मालिकों के लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से प्रेरित नहीं होता है।'' इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है :

i) व्यावसायिक उद्यम का मुख्य लक्ष्य सामाजिक उद्देश्य होता है।

ii) इन उद्यमों का लाभ समाज या व्यवसाय के फायदे के लिए पुनर्निवेश कर दिया जाता है।

iii) सामाजिक उद्यम मालिकों या अंशधारियों के लिए लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से प्रेरित नहीं होता है।

ब्रिटिश काउनशिल के सर्वेक्षण भारत के सामाजिक उद्यम का अवस्था के अनुसार भारत के सामाजिक उद्यमों के उद्देश्य हैं ''रोजगार का सृजन करना (62%) इसके बाद स्वास्थ्य का सुधार (41%), वातावरण का संरक्षण (40%), सामाजिक वहिष्करण का संबोधन (40%), कृषि या उससे जुड़ा हुआ क्रियाएँ (36%), महिलाओं का सशक्तिकरण (33%), शिक्षा को बढ़ावा देना (32%) वित्तीय समावेश (31%) और दूसरे संगठनों को सहायता प्रदान करना (20%)''।

उपर्युक्त क्रियाएँ यह दर्शाता है कि सामाजिक उद्यमें भारत के विकास में अपना योगदान दे रहा है। सामाजिक उद्देश्यों का धारणा सामाजिक प्रतिबद्धता तथा समाज के लिए पुनर्निवेश के धारणा को देश के सभी भागों में फैलाने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 2

1) व्यवसाय प्रारम्भ करते समय संगठन के चुनाव को प्रभावित करने वाले तत्वों की सूची बनाइये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) बताएँ कि निम्न कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

i) व्यवसाय का आकार जितना होता है, उतनी ही कम पूँजी की आवश्यकता होती हैं। ( )

ii) जब व्यवसाय का प्रत्यक्ष नियंत्रण करना हो, तब एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी वांछनीय है। ( )

iii) संगठन के रूप के चुनाव पर व्यवसाय की प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ( )

iv) यदि कारोबार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो तो साझेदारी संगठन का आदर्श रूप होता है। ( )

v) यदि सीमित देयता वांछित हो, तो कंपनी उपयुक्त होती है। ( )

vi) पब्लिक लिमिटेड कंपनी के द्वारा असीमित मात्रा में पूँजी जुटाना संभव होता है। ( )

vii) संगठन के कंपनी रूप में सरकारी नियमन अधिक होता है। ( )

3) सही उत्तर के सामने चिन्ह (√) लगाइये।

i) एक बहुत छोटे व्यवसाय के लिये संगठन का उपयुक्त रूप है **एकल स्वामित्व/कंपनी**

ii) बड़े पैमाने पर निर्माण करने वाले व्यवसाय के लिये **साझेदारी/कंपनी** का उपयुक्त रूप है।

iii) मध्यम पैमाने के फुटकर कपड़ा व्यवसाय के लिए संगठन का उपयुक्त रूप है। **साझेदारी/संगठन कंपनी।**

iv) पूँजी की छोटी राशि जुटाने के लिए **एकल स्वामित्व/सहकारी समिति** उपयुक्त है।

v) यदि जोखिम बहुत अधिक हो तो **साझेदारी/प्राइवेट लिमिटेड कंपनी** संगठन का उपयुक्त रूप है।

6.7 सारांश

स्थापना की सुगमता, सीमित देयता, पर्याप्त पूँजी जुटाने के अवसर, व्यावसायिक गोपनीयता बनाए रखना, लचीलापन, परिचालन में स्थायित्व, कम सरकारी नियंत्रण, कम कर-भार, उच्चतर प्रबंधन कुशलता, तथा अधिक स्वामित्व हित व्यावसायिक संगठन के आदर्श रूप के मुख्य लक्षण हैं।

संगठन के चार रूपों की तुलना से पता चलता है कि इनमें से किसी में भी सारे आदर्श लक्षण नहीं हैं। प्रत्येक रूप कुछ दृष्टियों से अच्छा है और कुछ अच्छा नहीं है। स्थापना की सुगमता, सरकारी नियंत्रण, स्वामित्व-हित, व्यावसायिक गोपनीयता तथा लचीलेपन की दृष्टि से एकल स्वामित्व तथा साझेदारी आदर्श रूप हैं। सीमित देयता, पूँजी जुटाने के अवसर, प्रबंधन क्षमता, स्थायित्व तथा परिचालन की निरंतरता की दृष्टि से कंपनी तथा सहकारी समिति आदर्श रूप हैं।

चूँकि प्रत्येक दृष्टि से कोई भी रूप आदर्श नहीं है, अतः उद्यमकर्त्ता को अपने व्यवसाय के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव करना पड़ता है। नया व्यवसाय प्रारम्भ करते समय संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव करने के लिए उद्यमकर्त्ता को व्यवसाय की प्रकृति, व्यवसाय के आकार, कारोबार के क्षेत्र, पूँजी-संबंधी आवश्यकताओं, वांछित नियंत्रण की मात्रा, व्यवसाय के प्रत्याशित जीवन, तथा सहकारी नियमन के वांछित स्तर के संबंध में विचार करना पड़ता है। विस्तार के समय, स्थिति के अनुसार उद्यमकर्त्ता या तो संगठन के वर्तमान रूप से काम चला सकता है, अथवा संगठन का एक नया रूप अपना सकता है।

इस विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि छोटे व्यवसाय के लिए संगठन का सबसे उपयुक्त रूप एकल स्वामित्व है। यदि व्यवसाय अपेक्षाकृत बड़ा है, तो साझेदारी उपयुक्त रूप है। मध्यम आकार वाले व्यवसाय के लिये प्राइवेट लिमिटेड कंपनी आदर्श रूप है तथा बड़े आकार वाले व्यवसाय के लिए पब्लिक लिमिटेड कंपनी उपयुक्त है। जब समाज के किसी एक विशेष वर्ग के हितों की रक्षा करनी हो, तो सहकारी संगठन उपयुक्त होता है।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

2) (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) सही (vi) सही (vii) गलत

3) i) एकल स्वामित्व, पब्लिक लिमिटेड कंपनी

ii) पब्लिक लिमिटेड कंपनी व सहकारी समिति, एकल स्वामित्व

iii) एकल स्वामित्व

iv) सहकारी समिति

v) एकल व्यापार तथा साझेदारी

vi) एकल व्यापार तथा साझेदारी

vii) पब्लिक लिमिटेड कंपनी

viii) पब्लिक लिमिटेड कंपनी

बोध प्रश्न 2

2) (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v)सही (vi) सही (vii) सही

3) (i) एकल स्वामित्व (ii) कंपनी (iii) साझेदारी (iv) एकल स्वामित्व (v) प्राइवेट

6.9 स्वपरख प्रश्न

1) व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के लक्षणों की व्याख्या कीजिये। कौन-सा रूप समस्त पहलुओं से आदर्श माना जा सकता है?

2) व्यावसायिक संगठन के चारों रूपों में से किसी में भी संगठन के आदर्श रूप के समस्त लक्षण नहीं होते? विवेचन कीजिये।

3) व्यावसायिक संगठन के रूप के चुनाव का निर्णय करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिये।

4) आपने एक व्यवसाय प्रारंभ करने की योजना बनाई है। आप व्यवसाय के लिए संगठन के एक उपयुक्त रूप का चुनाव किस प्रकार करेंगे?

5) सब प्रकार के व्यवसायों के लिए संगठन की कंपनी रूप सबसे आदर्श रूप है। विवेचन कीजिए।

6) एक साझेदारी फर्म में आपने व्यवसाय का विस्तार करने का निर्णय लिया है, जिसके लिए अधिक पूँजी तथा विशेषज्ञता की आवश्यकता है। इसे अधिक साझेदार लेने चाहियें, अथवा अपने आपको प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में परिवर्तित कर लेना चाहिये। उपयुक्त तर्क देते हुए अपनी सलाह दीजिये।

टिप्पणीः ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 7 सार्वजनिक उद्यम

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 सार्वजनिक उद्यम क्या है?

7.3 सार्वजनिक उद्यमों की विशेषताएँ और उद्देश्य

7.4 विभागीय संगठन

- 7.4.1 विशेषताएँ
- 7.4.2 गुण
- 7.4.3 दोष

7.5 लोक निगम

- 7.5.1 विशेषताएँ
- 7.5.2 गुण
- 7.5.3 दोष

7.6 सरकारी कंपनी

- 7.6.1 विशेषताएँ
- 7.6.2 सरकारी और गैर-सरकारी कंपनियों में भेद
- 7.6.3 गुण
- 7.6.4 दोष

7.7 संगठन के रूपों की तुलना

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.11 स्वपरख प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के विभिन्न रूपों के संबंध में बता सकें
- संगठन के प्रत्येक रूप की विशेषताओं को बता सकें
- प्रत्येक संगठन के गुणों को स्पष्ट कर सकें
- संगठन के प्रत्येक रूप के औचित्य का मूल्यांकन कर सकें।

7.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हैं कि निजी उद्यमकर्ताओं द्वारा प्रवर्तित व्यावसायिक उद्यमों का संगठन निम्नलिखित तीन में से किसी एक रूप में किया जाता है : 1) एकल स्वामित्व (sole proprietorship) 2) साझेदारी (partnership) और 3) संयुक्त पूँजी कंपनी (joint stock

company)। लेकिन सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के रूप भिन्न होते हैं। ये हैं : 1) विभागीय संगठन (departmental organisation) 2) लोक निगम (public corporation) और सरकारी कंपनी (government company)। इन तीनों को ही चित्र 17.1 में दिखाया गया है। इस इकाई में संगठनों के इन तीन रूपों की विशेषताओं, गुणों और दोषों के संबंध में चर्चा की जाएगी तथा यह देखा जाएगा कि किसी विशेष स्थिति में कौन–सा रूप अधिक उपयुक्त होता है।

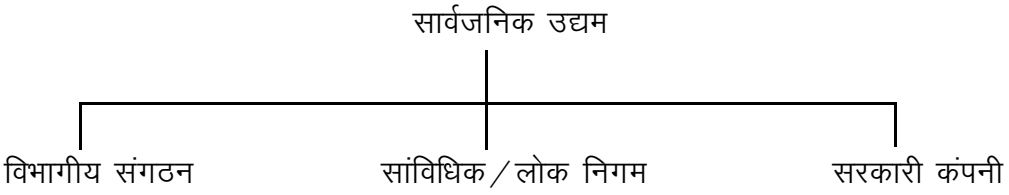

चित्र 17.1: सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के रूप

7.2 सार्वजनिक उद्यम क्या है?

यह बताया जा चुका है कि सरकार के अधीनस्थ उद्यमों को सार्वजनिक उद्यम कहा जाता है। सही अर्थ में व्यावसायिक अस्तित्व के रूप में ''सार्वजनिक उद्यम'' से अभिप्राय उस औद्योगिक या व्यापारिक उपक्रम से होता है जो केन्द्र राज्य या स्थानीय सरकार के स्वामित्व और प्रबंध में होता है और जिससे उत्पादित वस्तुओं को निःशुल्क रूप से बांटा नहीं जाता बल्कि उनका विपणन किया जाता है। इस प्रकार सार्वजनिक उद्यमों के अंतर्गत विनिर्माण व्यापार तथा सेवा संगठन आ जाते हैं जो वास्तव में व्यवसाय उपक्रम ही है।

सार्वजनिक उद्यमों के अंतर्गत राष्ट्रीयकृत निजी संगठन तथा वे नए उद्यम आते हैं जिनका संवर्धन सरकारी स्वामित्व और नियंत्रण के अंतर्गत होता है। निजी संगठनों का राष्ट्रीयकरण करके जिन सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना की गई है उनके कुछ उदाहरण हैं – जीवन बीमा निगम, इंडियन एयर लाइन्स कार्पोरेशन, कोल इंडिया लिमिटेड, आदि। जिन सार्वजनिक उद्यमों का संवर्धन सरकार ने किया है उनके कुछ उदाहरण हैं – हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, हिन्दुस्तान एंटिबायोटिक्स लिमिटेड तथा चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स।

लोक उद्यम क्षेत्र की योजनाएँ

लाभ अर्जन करने वाले लोक उद्यम के बोर्ड को भारत सरकार अधिक शक्ति (Power) प्रदान किया है। इस उद्देश्य से महारत्न, नवरत्न और मिनीरत्न योजना का संचालन किया गया है। आइए उनका हम अध्ययन करें।

महारत्न योजना : महारत्न योजना का प्रारंभ वर्ष 2010 से हुआ था। इस योजना का मुख्य उद्देश्य केन्द्रीय लोक निगम को सशक्त करना है ताकि वे अपने संचालन का विस्तार कर वैश्विक विशाल उद्यम के रूप में उभर कर आएँ। आठ महारत्न केन्द्रीय लोग उद्यम हैं। ये उद्यम हैं i) कोल इन्डिया लिमिटेड ii) भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड iii) गेल इन्डिया लिमिटेड, iv) इण्डियन ऑयल कोरपोरेशन लिमिटेड v) एन.टी.पी.सी. लिमिटेड vi) ऑयल एण्ड नैचुरल गैस कारपोरेशन लिमिटेड vii) स्टील आथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड viii) भारत पोट्रेलियम कारपोरेशन लिमिटेड।

नवरत्न योजना : नवरत्न योजना का प्रारंभ वर्ष 1997 में हुआ था। उस योजना का मुख्य उद्देश्य उन केन्द्रीय लोक उद्यमों का पता लगाना जिसे तुलनात्मक फायदा है और उन्हें वैश्विक विशाल उद्यम बनने के लिए समर्थन प्रदान करना है। इस योजना में बोर्ड को

संचालन के लिए अधिक शक्ति प्रदान किया गया है जैसे i) पूँजी व्यय ii) संयुक्त उद्यम/सहायक कंपनी में निवेश iii) विलय और अधिग्रहण iv) मानव संसाधन विकास आदि। केन्द्रीय लोक निगम उद्यमों में 16 नवरत्न उद्यम हैं। ये नवरत्न उद्यम हैं। i) भारत इलेक्ट्रानिक्स लिमिटेड ii) कन्टेनर कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड iii) इन्जिनियर इण्डिया लिमिटेड iv) हिन्दुस्तान एरोनोटिकल्स लिमिटेड v) हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कोरपोरेशन लिमिटेड vi) महानगर टेलिफोन निगम लिमिटेड और 10 अन्य।

मिनिरत्न योजना : मिनिरत्न योजना का प्रारंभ वर्ष 1997 में प्रारंभ हुआ था। भारत सरकार इन्हें अधिक स्वायत्तता और वित्तीय प्रत्यायोजन प्रदान किया है ताकि ये कार्यकुशल और प्रतिस्पर्धात्मक हो जाएँ। मिनिरत्न उद्यमों को दो वर्गों में बांटा गया है कैटेगरी 1 और कैटेगरी-II। केन्द्रीय लोक उद्यम में 74 मिनिरत्न उद्यम हैं। कैटेगरी-I के मिनिरत्न उद्यम हैं: i) एयरपोर्ट आथोरिटी ऑफ इण्डिया ii) एन्ट्रिक्स कारपोरेशन लिमिटेड, iii) बाल्मर लावरी एण्ड कं. लिमिटेड iv) भारत कुकिंग कोल लिमिटेड v) भारत डायनामिक्स लिमिटेड और 54 अन्य उद्यमें। कैटेगरी-II के मिनिरत्न हैं i) आर्टिफिशियल लिम्बस मैनुफैक्चरिंग कारपोरेशन ऑफ इण्डिया ii) भारत पम्पस एण्ड कम्प्रेसर्स मिमिटेड iii) ब्राडकास्ट इन्जीनियरिंग कनसलटेन्टस लिमिटेड iv) केन्द्रीय माइन प्लानिंग और डिजाइन इन्सटीट्यूट लिमिटेड v) सेन्ट्रल रेल साइड वेअरहाउस कंपनी लिमिटेड और 10 अन्य उद्यमें।

लोक निगम क्षेत्र का कार्य निष्पादन

भारत सरकार के लोक उद्यम विभाग का वार्षिक रिपोर्ट 2017-18 के अनुसार भारत में 320 केन्द्रीय लोक उद्यम हैं। 244 संचालित उद्यमें हैं। 76 उद्यमें अभी संचालन कार्य प्रारंभ नहीं किए हैं। 244 संचालित उद्यमों में से 165 उद्यमें वर्ष 2015–16 में लाभ अर्जित कर रहे थे। बॉकि 78 उद्यमें वर्ष 2015-16 में हानि उठा रहे थे।

लोक उद्यमों का डिसइन्वेस्टमेन्ट (Disinvestment of Public Enterprises)

investopedia.com के अनुसार लोक उद्यमों का डिसइन्वेस्टमेन्ट किसी संगठन का एक प्रक्रिया है जिसमें सरकार अपना सम्पत्ति या सहायक संस्थान का विक्रय करता है या बंद करता है। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के निवेश और लोक सम्पत्ति प्रबन्ध विभाग के अनुसार डिसइन्वेस्टमेंट नीति के मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

i) ''लोक उद्यम क्षेत्र देश का धन है और इसका सुनिश्चित करना कि यह धन जनता के हाथ में हो ताकि जनता का केन्द्रीय लोक उद्यम के स्वामित्व का संवर्धन किया जा सके।

ii) जब केन्द्रीय लोक उद्यम में अल्पमत शेयर द्वारा डिसइन्वेस्टमेंट के लिए विक्रय किया जाता है तो सरकार के पास बहुमत शेयर मौजूद होता है यानि 51 प्रतिशत लोक उद्यम के शेयर और प्रबन्धन में नियंत्रण।

iii) सामरिक डिसइन्वेस्टमेंट के लिए बहुत अधिक मात्रा में चुने गए केन्द्रीय लोक निगम के सरकारी शेयर का 50 प्रतिशत या उससे अधिक मात्रा में विक्रय करना जिसमें प्रबंध का नियंत्रण भी शामिल है''।

सार्वजनिक उद्यम और निजी उद्यम के बीच अंतर

निजी उद्यम से अभिप्राय उन औद्योगिक या वाणिज्यिक संगठनों से होता है जिनकी स्थापना सरकारी कानूनों और नियमों के अनुसार एकल या समूह स्वामित्व के अधीन की जाती है। इसके अंतर्गत विनिर्माण और वाणिज्यिक कंपनियां तथा मध्यम और छोटी फर्में आती हैं,

जिनका संगठन एकल स्वामित्व (Sole Proprietorship) और साझेदारी (Partnership) प्रतिष्ठानों के रूप में किया जाता है।

निजी उद्यमों का मुख्य प्रयोजन अपने लिए लाभ कमाना होता है। सार्वजनिक उद्यमों का संचालन सरकार द्वारा बनाई गई सार्वजनिक नीतियों के अनुसार होता है और उनका उद्देश्य होता है समाज कल्याण को अधिकाधिक बढ़ाना और लोकहित को बनाए रखना। भारत के सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्यों को विकास योजनाओं के उद्देश्यों के अनुरूप ही निर्धारित किया गया है। ये अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार तथा संसद या राज्य विधान मंडलों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। निजी उद्यमों को इस बात की स्वतंत्रता होती है कि वे अपना उद्देश्य मनमाने ढंग से निर्धारित करें और किसी प्रकार के भी व्यावसायिक कार्य को, बशर्ते कि वह अवैध न हो, अपने हाथ में लें। परंतु यह स्मरणीय है कि निजी उद्यमों को इस बात की स्वतंत्रता होती है कि वे अपना उद्देश्य अपने ढंग से निर्धारित करें और किसी प्रकार के भी व्यावसायिक कार्य को, बशर्ते कि वह अवैध न हो, अपने हाथ में लें। परंतु यह स्मरणीय है कि निजी उद्यमों का विनियमन विभिन्न प्रकार के सरकारी नियंत्रणों के अनुसार होता है।

7.3 सार्वजनिक उद्यमों की विशेषताएँ और उद्देश्य

विशेषताएँ

सार्वजनिक उद्यमों की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं जो उन्हें निजी उद्यमों से भिन्न करती है:

1) सार्वजनिक उद्यमों का स्वामित्व और प्रबंध सरकार या सरकार द्वारा बनाई गई एजेन्सियों के द्वारा होता है।

2) सार्वजनिक उद्यमों के लिए आवश्यक समस्त पूंजी या उसके बहुत बड़े भाग की व्यवस्था सरकार करती है।

3) सार्वजनिक उद्यमों का संगठन विभागीय उपक्रम, कानूनी निगम (Statutory Corporation) या सरकारी कंपनी के रूप में किया जा सकता है।

4) सार्वजनिक उद्यमों का संचालन सरकार द्वारा लोकहित में निर्धारित सार्वजनिक नीतियों के अनुसार होता है। इनका प्रयोजन लाभ कमाना मात्र ही नहीं होता है।

5) सार्वजनिक उद्यमों के उद्देश्य विकास योजनाओं के उद्देश्यों के अनुरूप होते हैं। ये अपने कार्य–निष्पादन और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संसद या राज्य विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

उद्देश्य

जिन कारणों से बाध्य होकर सार्वजनिक उद्यमों का विकास किया जा रहा है, उससे स्पष्ट है कि इनके मुख्य उद्देश्य अनेक हैं। इन उद्देश्यों को नीचे दिया जा रहा है :

1) विकास योजनाओं के अनुरूप औद्योगिक संवृद्धि के द्वारा द्रुत गति से आर्थिक विकास की प्राप्ति।

2) आर्थिक संवृद्धि के लिए संसाधनों का यथासंभव सर्वोत्तम उपयोग।

3) जनकल्याण लाना और आय तथा संपत्ति के वितरण में असमानता को घटाना।

4) उद्योग और व्यापार का संतुलित क्षेत्रीय विकास करना।

5) एकाधिकार की वृद्धि को रोकना और कुछ लोगों के हाथ में आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर रोक लगाना।

6) आम जनता की कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से बाज़ार में आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों पर नियंत्रण रखना।

7) वित्तीय संस्थाओं के द्वारा सार्वजनिक बचतों की इस प्रकार व्यवस्था करना कि सुनियोजित प्राथमिकताओं के अनुरूप सार्वजनिक और निजी उद्यमों की माँगों की पूर्ति की जा सके।

8) अपने कर्मचारियों की सेवा संबंधी स्थितियों को संतोषजनक बनाना जिससे सार्वजनिक उद्यमों को आदर्श नियोक्ता माना जाए।

7.4 विभागीय संगठन (Departmental Organisation)

सार्वजनिक उद्यमों का संगठन और प्रबंध जिस प्रकार से होता है उनमें विभागीय संगठन सबसे पुरानी है। इस प्रकार के संगठन के अंतर्गत उपक्रमों के व्यावसायिक कार्यों का संचालन सरकार के किसी एक विभाग के अधीन होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि किसी सार्वजनिक उद्यम का संगठन, वित्त व्यवस्था और नियंत्रण जब किसी अन्य सरकारी विभाग जैसा ही होता है, तब उसे विभागीय संगठन कहा जाता है। संगठन के इस रूप का चुनाव प्रायः उन उपक्रमों के लिए किया जाता है जो सार्वजनिक हित और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं। यह प्रायः उन उपक्रमों के लिए उपयुक्त होता है जिनका संचालन केवल व्यावसायिक सिद्धांतों के ही आधार पर नहीं किया जाता। विभागीय संगठन प्रायः निम्नलिखित स्थितियों में उपयुक्त होता हैः

i) जब किसी उद्यम का मुख्य उद्देश्य सरकार के लिए आय कमाना हो।

ii) सार्वजनिक हित के लिए जब सरकार किन्हीं सेवाओं, जैसे डाक–तार, प्रसारण आदि को अपने पूर्ण नियंत्रण में रखना चाहती हो।

iii) सामरिक महत्त्व की दृष्टि से जब गोपनीयता आवश्यक हो (जैसे परमाणु ऊर्जा, रक्षा उद्योग आदि)।

iv) जब परियोजनाओं संबंधी कार्य प्रारंभिक अवस्था में ही हों और उन पर प्रयास और धन की आवश्यकता हो, जिनकी व्यवस्था केवल सरकार ही कर सकती है। परंतु अब यह माना जाने लगा है कि रक्षा उद्योगों तक के क्षेत्र में भी गैर–सरकारी उद्यमों का भी सहयोग होना चाहिए। उदाहरणार्थ, भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड में, जो सरकारी उपक्रम है, कंपनी जैसा प्रबंध है। 1981 ई. में दूर–संचार सेवाओं के एक भाग को संयुक्त पूँजी कंपनी के रूप में परिवर्तन कर दिया गया है। इनमें से एक का नाम "विदेश संचार निगम लिमिटेड' है, जिस पर विदेशी दूरसंचार सेवा का दायित्व है। दूसरा है "महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड' जो बम्बई और दिल्ली महानगरों में टेलीफोन सेवा का संचालन करता है।

7.4.1 विशेषताएँ

विभागीय संगठन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैंः

1) **सर्वोपरि नियंत्रण मंत्री के हाथ में होता हैः** इस प्रकार के संगठन के अंतर्गत प्रबंध की कुल जिम्मेदारी उस मंत्री की होती है जिसके मंत्रालय के अधीन यह उपक्रम होता है। मंत्री प्राधिकार का प्रत्यायोजन संगठन में नीचे के विभिन्न स्तरों के बीच कर देता है।

कुछ स्थितियों में कार्यों के दिन–प्रतिदिन के प्रबंध के लिए सरकार बोर्ड बना देती है। इस प्रकार के बोर्डों के उदाहरण हैं – रेल बोर्ड, डाक सेवा बोर्ड, दूर संचार बोर्ड इत्यादि। परंतु कुल जिम्मेदारी मंत्री की होती है जो उपक्रम के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होता है।

2) **कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं:** विभागीय संगठनों के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं। उदाहरणार्थ, प्रशासनिक तथा पुलिस सेवाओं के ही समान रेल और डाक सेवाओं (जो विभागीय संगठन है) के राजपत्रित अधिकारियों का चुनाव संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) के द्वारा ही होता है। इन सेवाओं के कर्मचारियों के निबंधन और शर्तें (terms and conditions) अन्य सरकारी कर्मचारियों के ही जैसी होती हैं।

3) **इनकी वित्त व्यवस्था बजट विनियोजन (Budget appropriation) द्वारा होती है:** विभागीय संगठनों का वित्त व्यवस्था सरकार से स्वतंत्र नहीं होती। इनकी वित्त व्यवस्था वार्षिक बजट विनियोजन के द्वारा सरकारी खजाने से होती है और इनसे हुई आय को सरकारी खजाने में जमा कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, रेल और डाक (ये विभागीय संगठन हैं) बजटें सरकारी बजट होते हैं।

4) **लेखाकरण तथा अंकेक्षण प्रणालियाँ (Accounting and auditing systems):** इस प्रकार के संगठन को बजट लेखाकरण तथा अंकेक्षण संबंधी नियंत्रण के अधीन रहना होता है। इस कार्य के लिए उपक्रम को अन्य सरकारी संगठनों जैसा ही माना जाता है।

5) **सम्पूर्ण छूट (Sovereign immunity):** सरकार का अभिन्न अंग होने के नाते इसे राज्य की सम्पूर्ण छूट प्राप्त होती है। इसी कारण सरकार की सहमति के बिना इसके खिलाफ मुकद्मा नहीं किया जा सकता।

7.4.2 गुण (Merits)

आपने विभागीय संगठन के अर्थ और उसकी विशेषताओं के संबंध में पढ़ा। अब हम इसके गुणों के बारे में विचार करेंगे। इस प्रकार के संगठन के निम्नलिखित गुण हैं:

1) **अधिकतम सरकारी नियंत्रण:** इस प्रकार के संगठन पर सरकार का अधिकतम नियंत्रण होता है। अतः सरकार अपने सामाजिक दायित्वों को अच्छी तरह निभा सकती है।

2) **लोक–निधि (Public funds) के दुरुपयोग की कम संभावना:** जैसा कि आप जानते हैं, विभागीय उपक्रमों का प्रबंधन संबंधित मंत्रालय के द्वारा होता है, अतः ये उपक्रम संसद के प्रति पूर्णतः उत्तरदायी होते हैं। आपने यह भी पढ़ा कि बजट, लेखाकरण तथा अंकेक्षण कार्यों के लिए इन्हें अन्य सरकारी विभागों जैसा ही माना जाता है, अतः लोक निधि के दुरुपयोग का खतरा कम हो जाता है। कृष्णा मेनन समिति के शब्दों में विभागीय उपक्रमों का प्रबंधन संबंधित मंत्रालय के अधीन होने के कारण संसद के प्रति उनका उत्तरदायित्व (accountability) पूरी तरह से होता है।

3) **आर्थिक क्रियाओं पर सरकारी नियंत्रण:** इन उपक्रमों की आर्थिक क्रियाओं पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है, अतः अपनी सामाजिक और आर्थिक नीतियों के साधन के रूप में इनका उपयोग वह निर्बाध रूप से कर सकती है।

4) **आर्थिक प्रगति में वृद्धि:** विभागीय उपक्रमों में होने वाली बचत से सरकार की आय बढ़ती है। इस प्रकार राष्ट्र की आर्थिक प्रगति और जन–कल्याण में इन बचतों का उपयोग किया जा सकता है।

5) **संसद के प्रति उत्तरदायीः** विभागीय उपक्रम अपने दिन–प्रतिदिन के कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। संसद में पूछे जाने वाले प्रश्नों के संबंध में वह किसी विशेषाधिकार का सहारा नहीं ले सकता। उदाहरणार्थ, कोई संसद सदस्य यदि किसी कर्मचारी की नियुक्ति, बखान या पदोन्नति अथवा खरीद या बिक्री संबंधी किसी सौदे के संबंध में प्रश्न पूछता है तब इसे विवाद उपक्रम के दिन–प्रतिदिन की कार्यवाही के अंतर्गत माना जाता है। परंतु सांविधिक (statutory) निगम या सरकारी कंपनी के संबंध में ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जा सकते।

7.4.3 दोष

विभागीय संगठन में निम्नलिखित दोष हैं:

1) **नौकरशाही और लाल फीताशाहीः** आपको मालूम ही है कि इन विभागीय उपक्रमों के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं। अतः यह कुछ सरकार के नौकरशाही तंत्र जैसा ही होता है, जिसमें प्रत्येक निर्णय के दौरान नियमों, विनियमों और पूर्व निर्णयों पर बहुत जोर दिया जाता है। इसलिए इनमें कर्मचारियों के लिए पहल की गुंजाइश बहुत कम होती है। व्यावसायिक उपक्रमों में निर्णय के संबंध में प्रायः लचीलेपन तथा शीघ्रता की जरूरत पड़ती है, परंतु विभागीय उपक्रमों में ऐसा करना संभव नहीं होता।

2) **राजनीतिक अस्थिरता का शिकारः** ये उपक्रम प्रायः सत्तारूढ़ दल के आश्रित होते हैं। इनका भाग्य भी शासक दल और विपक्ष के बीच के शक्ति–संतुलन के साथ जुड़ा होता है। अतः राजनीतिक परिवर्तन या राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति में इन पर किसी न किसी प्रकार का खतरा आने की संभावना बनी रहती है। इसीलिए राजनीतिक परिवर्तनों का इन पर भी प्रभाव पड़ता है और राजनीतिक कारणों से इन पर आक्षेप भी लगाए जाते हैं।

3) **अत्यधिक संसदीय नियंत्रणः** ऊपर आप पढ़ चुके हैं कि विभागीय उपक्रम अपनी दिन प्रति दिन की कार्रवाइयों तक के लिए संसद के प्रति पूर्णतः उत्तरदायी होते हैं। इसीलिए इनमें पहल और कुशलता की गुंजाइश कम होती है। केवल संसद में ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी उनकी कार्रवाइयों के संबंध में विस्तारपूर्वक छानबीन और आलोचना की जाती है। इसी कारण इन उपक्रमों को निर्णय लेने में देर लगती है।

4) **व्यावसायिक निपुणता की कमीः** जैसा कि आप जानते हैं, उन उपक्रमों का प्रबंधन सरकारी कर्मचारियों द्वारा होता है, जिनके पास प्रायः व्यवसाय चातुर्य (business acumen) नहीं होता। उनका चयन और प्रशिक्षण सर्वथा भिन्न प्रयोजन से किया जाता है। कार्यविधियों और नियमों का सख्ती से पालन होने के कारण निर्णय लेने के कार्य में देर होती है, जो व्यावसायिक सिद्धांतों के प्रतिकूल है। इसके अतिरिक्त इन अधिकारियों के स्थानांतरण पर कोई रोक नहीं होती। इस कारण वे अपने कार्य में उतना निपुण नहीं हो पाते तथा अपने दायित्व को उतना नहीं निभा पाते जितना कि उनसे अपेक्षा की जाती है।

5) **प्रतिस्पर्धा और लाभ की प्रेरणा का अभावः** विभागीय उपक्रमों का उद्देश्य सेवा करना होता है, इसलिए इनके संचालन में उन व्यावसायिक सिद्धांतों की उपेक्षा कर दी जाती है जो इनकी सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिस्पर्धा के अभाव में इनकी प्रचालन कुशलता को बढ़ाने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं होता।

6) **वित्तीय बाध्यताएँः** आप जानते हैं कि इन उपक्रमों की वित्त व्यवस्था वार्षिक बजट विनियोजन के द्वारा होती है, जिसे विनियोजित करता है तथा इनकी आय को सरकारी

खजाने में जमा किया जाता है। ये स्वयं ही अपने लिए आवश्यक धन नहीं जुटा सकते। इसके लिए इन्हें पूर्णतः सरकार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसी कारण कभी–कभी इन्हें वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त वित्तीय मामलों के संबंध में इनमें बहुत लचीलापन नहीं होता। क्योंकि इन्हें बजट, लेखाकरण तथा अंकेक्षण संबंधी नियंत्रणों के अधीन रहकर कार्य करना होता है।

बोध प्रश्न 1

1) सार्वजनिक उपक्रमों के संगठन के क्या रूप होते हैं?

2) सार्वजनिक उद्यमों में विभागीय संगठन किसे कहते हैं?

3) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?

   i) विभागीय प्रकार के संगठन में सर्वोपरि नियंत्रण प्रबंध निदेशक के हाथ में होता है।

   ii) विभागीय रूप में गठित सार्वजनिक उद्यम जनता के बीच शेयरों को जारी कर सकता है।

   iii) विभागीय रूप में गठित सार्वजनिक उद्यम के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं।

   iv) विभागीय संगठन में किसी व्यक्ति को पूँजी का अंशदायी (subscriber) नहीं बनने दिया जाता।

   v) विभागीय रूप तभी उपयुक्त है जब कोई सार्वजनिक उद्यम लाभ की प्रेरणा से कार्य करता है।

   vi) विभागीय रूप उस स्थिति में उपयुक्त नहीं होता जहाँ सामरिक महत्त्व की दृष्टि से गोपनीयता को आवश्यक माना जाता है।

   vii) विभागीय प्रकार के संगठन में लाल फीताशाही तथा नौकरशाही संबंधी दोष होते हैं।

   viii) विभागीय उपक्रमों के कर्मचारियों का स्थानांतरण नहीं हो सकता।

7.5 लोक निगम (Public Corporation)

लोक निगम निगमित निकाय (Corporate body) होता है जिसका निर्माण, संसद या राज्य विधान मंडल द्वारा बनाए गए विशेष अधिनियम के द्वारा होता है, जिसमें निगम की शक्तियों, कर्तव्यों, कार्यों, छूटों और प्रबंध के स्वरूप का स्पष्टीकरण होता है। लोक–निगम को सांविधिक निगम (Statutory Corporation) के नाम से भी जाना जाता है। इसकी समस्त पूँजी सरकार द्वारा लगाई हुई होती है। इसका प्रबंध, प्रबंध समिति करती है, जिसका गठन अधिनियम के उपबंधों के अनुसार होता है। लोक–निगम संसद या राज्य विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है।

जैसा कि रूज़वेल्ट ने कहा है, लोक–निगम ऐसा संगठन है जो सरकारी अधिकारों से सज्जित तो होता है, परंतु साथ ही साथ इसके पास निजी उद्यम का लचीलापन भी होता है। हरबर्ट मौरीसन के अनुसार लोक निगम वह संगठन है जिसका निर्माण जनता की भलाई के उद्देश्य से सार्वजनिक स्वामित्व, सार्वजनिक उत्तरदायित्व और व्यावसायिक प्रबंध के संयोजन से होता है। इस प्रकार लोक निगम वह युक्ति है जिसके द्वारा निजी क्षेत्र में कार्यरत कंपनी के प्रकार के संगठन की कार्यप्रणाली के लचीलेपन के साथ सार्वजनिक हित

का संयोजन किया जाता है। आमतौर पर निगमों का गठन निम्नलिखित में से किसी भी प्रयोजन से किया जाता है:

i) क़िसी राष्ट्रीयकृत उपक्रम के व्यवसाय का निगम को हस्तांतरण।

ii) किसी वर्तमान कंपनी के उपक्रमों के अधिग्रहण (acquisition) कार्य को सरल बनाना।

iii) कुछ योजनाओं का संवर्धन, विकास और प्रचालन।

iv) कुछ सामाजिक सेवाओं और उपयोग सेवाओं (utility services) का विस्तार।

v) किसी संस्था की कार्यप्रणाली और उसके प्रचालन या तत्संबंधी अन्य मामलों का विनियमन और नियंत्रण।

लोक निगमों का विकास आजादी के बाद की घटना है। देश का सर्वप्रथम लोक निगम दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation) है जिसकी स्थापना 1948 ई. में संसद द्वारा बनाए गए अधिनियम के अंतर्गत हुई। यह बहुउद्देश्य नदी परियोजना है। निजी क्षेत्रक के उद्योगों की वित्त व्यवस्था के लिए सरकार ने उसी वर्ष भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India) की स्थापना की। 1953 ई. में जब इंडियन एयरलाइन्स और एयर इंडिया की स्थापना हुई तभी वायु निगम अधिनियम भी पारित हुआ। स्टेट बैंक आफ इंडिया अधिनियम के द्वारा 1955 ई. में स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (State Bank of India) की स्थापना हुई तथा 1956 के जीवन बीमा अधिनियम के अधीन भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India) बनाया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार को जब भी कोई वाणिज्यक कार्य करना होता है तब वह संसद से इसके लिए अनुमति लेती है।

इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि प्रत्येक निगम के लिए अलग से अधिनियम होना आवश्यक नहीं है। एक ही अधिनियम के अंतर्गत एक से अधिक सांविधिक निगमों की स्थापना की जा सकती है। उदाहरणार्थ, 1948 के विद्युत (पूर्ति) अधिनियम के अधीन अधिकतर राज्यों में राज्य विद्युत बोर्डो (State Electricity Boards) की स्थापना हुई है। उसी प्रकार अधिकतर राज्यों में 1951 ई. के राज्य वित्तीय निगम अधिनियम के अंतर्गत राज्य वित्त निगम बनाए गए हैं।

7.5.1 विशेषताएँ

लोक निगम किसे कहते हैं, इस संबंध में आप पढ़ चुके हैं। अब हम इन निगमों की मुख्य विशेषताओं के संबंध में विचार करेंगे।

1) **विधान मंडल के विशेष अधिनियम के अंतर्गत स्थापना:** लोक निगम स्वायत्त निगमित निकाय (autonomous corporate body) होता है, जिसकी स्थापना राज्य विधान मंडल या संसद द्वारा बनाए गए विशेष अधिनियम के अंतर्गत होती है। निगम की शक्तियों, कर्तव्यों, विशेषाधिकारों, छूटों तथा अन्य सरकारी विभागों आदि के साथ इसके संबंधों का स्पष्टीकरण अधिनियम में दिया होता है।

2) **यह निगमित निकाय है:** संयुक्त पूँजी कंपनी के ही समान निगम भी एक विधिक एका (legalentity) होता है। यह एक कृत्रिम व्यक्ति है जिसका कानूनी दृष्टि से अपना अस्तित्व होता है। किसी जीवित व्यक्ति के ही समान यह संविदा कर सकता है तथा अपने नाम से कोई कारोबार कर सकता है। चूँकि इसका भौतिक अस्तित्व नहीं होता, अतः इसका कार्य इसके एजेंटों यानी निदेशक मंडल के द्वारा होता है।

3) **राज्य का स्वामित्वः** इस पर राज्य का पूर्ण स्वामित्व होता है और इसकी समस्त पूँजी राज्य द्वारा लगाई हुई होती है।

4) **निदेशक मंडल द्वारा प्रबंधः** इसका प्रबंध निदेशक मंडल द्वारा होता है जिसका गठन अधिनियम के उपबंधों (provisions) के अनुसार होता है। निदेशक मंडल के सदस्य विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनकी नियुक्ति संबंधित सार्वजनिक प्राधिकरण (public authority) करता है।

5) **विधान मंडल के प्रति उत्तरदायीः** लोक निगम उस विधान मंडल (संसद या राज्य विधानमंडल) के प्रति उत्तरदायी होता है, जो इसका निर्माण करता है। अधिनियम में यह दिया होता है कि उत्तरदायित्व किस प्रकार का होगा। संसद से यह अपेक्षा नहीं की जाती, कि वह उसके दिन–प्रतिदिन के कार्यों में हस्तक्षेप करे। फिर भी वह निगम की नीति संबंधी मामलों और उसके कुल कार्य–निष्पादन के संबंध में चर्चा कर सकता है परंतु संसद में कभी–कभी ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं और उनका उत्तर भी दिया जाता है जो किसी निगम की दिन–प्रतिदिन की कार्रवाइयों से संबंधित होते हैं। आप पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों होता है? उत्तर यह है कि प्रजातंत्र में संसद को सर्वोच्च अधिकार है, अतः उससे कहना अत्यंत कठिन है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं। इसके अतिरिक्त किसी निगम में जब अव्यवस्था आ जाती है तब उसके कार्य–निष्पादन के संबंध में प्रश्न पूछने से संसद को रोका नहीं जा सकता, भले ही यह उक्त सिद्धांत का उल्लंघन हो जिसे संसद स्वयं ही स्वीकृत कर चुकी हो।

6) **सरकार के साथ संबंधः** हालांकि कानूनी निगम सरकार के स्वामित्व के अधीन होता है फिर भी यह सरकार के विभाग या अंग के रूप में कार्य नहीं करता। निगम के निगमन अधिनियम में यह दिया हुआ होता है कि सरकार और निगम के बीच किस प्रकार का कानूनी संबंध और संप्रेषण माध्यम होगा। उदाहरणार्थ, जीवन बीमा निगम, जो एक कानूनी निगम है, का जन हित संबंधी नीतियों के मामलों में मार्ग निर्देशन केन्द्रीय सरकार लिखित रूप में आदेश देकर करती है। इस प्रकार सरकार के साथ इसका संबंध औपचारिक तथा स्पष्ट होता है। परंतु व्यवहार रूप में हम देखते हैं कि कानूनी निगमों के साथ अनेक कार्य अनौपचारिक ढंग से ही हो जाते हैं। आगे दिए गए उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि ऐसा कैसे होता है। मान लें कि इंडियन एयरलाइन्स दिल्ली और इम्फाल के बीच कोई विमान सेवा इसलिए नहीं चला रही है कि ऐसा करना अलाभकर है। परंतु सरकार चाहती है कि इंडियन एयरलाइन्स यह सेवा शुरू करे। वायु निगम अधिनियम के अधीन सरकार इंडियन एयरलाइन्स को लिखित आदेश दे सकती है कि वह ऐसा करे। परंतु सामान्यतः सरकार ऐसा नहीं करती बल्कि इस संबंध में केवल सुझाव दे देती है, क्योंकि सरकार के लिखित आदेश के पालन की स्थिति में इंडियन एयरलाइन्स को यदि घाटा उठाना पड़ा तो उसकी क्षतिपूर्ति सरकार को करनी होगी। अतः अनेक मामलों में सरकार अपने ऊपर किसी प्रकार का दायित्व लिए बिना ही अनौपचारिक ढंग से अपना काम करा लेती है।

7) **कर्मचारी भर्ती संबंधी निजी प्रणालीः** यद्यपि निगम का स्वामित्व और प्रबंध सरकार के अधीन होता है पर उसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। निगम द्वारा निर्धारित निबंधन और शर्तों के अनुसार उनकी भर्ती होती है, उन्हें पारिश्रमिक मिलता है और उन पर नियंत्रण रहता है। उनके वेतन तथा अन्य आर्थिक लाभ सरकारी नौकरों के समान नहीं होते। इस प्रकार अपने कर्मचारियों के संबंध में निगम के पास आवश्यक स्वतंत्रता होती है। फिर भी निगम के नियोजन संबंधी अवधि और शर्तों को सरकार बड़ी कड़ाई से नियमित करती है। ऐसा वह मुख्यतः इसलिए करती है कि अनेक निगमों में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन तथा अन्य लाभ के बीच एकरूपता बनी रहे।

8) **वित्तीय स्वतंत्रता:** कानूनी निगम की स्वायत्तता का मुख्य स्रोत है वित्तीय मामलों में उसका स्वतंत्र होना। विभागीय प्रकार के संगठन के विपरीत लोक निगम पर बजट, लेखाकरण तथा अंकेक्षण संबंधी नियंत्रण नहीं होते। इसकी अपनी निधि होती है, जिसमें उसकी आय को जमा किया जाता है तथा इसमें से राशि निकाल कर भुगतान किया जाता है। निगम को जो भी राशि प्राप्त होती है उसकी व्यवस्था वह अपने ढंग से करता है। अपने बजट की स्वीकृति के लिए उसे संसद के सम्मुख नहीं जाना पड़ता। सरकार की स्वीकृति लेकर निगम देश के अंदर तथा देश के बाहर से धन उधार ले सकता है।

7.5.2 गुण

लोक निगम विभागीय ढंग से चलने वाले सरकारी उपक्रमों और निजी स्वामित्व और प्रबंधन के अंतर्गत के निगमित निकायों के बीच का मार्ग दिखाता है। इन दोनों की कुछ मुख्य वांछनीय विशेषताओं को यह आत्मसात् कर लेता है जिससे इन दोनों के ही गुण इसमें आ जाते हैं। इसके साथ ही साथ यह– इन दोनों के कुछ मुख्य दोषों को दूर कर देता है। अब हम निगम प्रकार के संगठन के गुणों के संबंध में विचार करेंगे। ये गुण निम्नलिखित हैं:

1) **पहल और लचीलापन:** चूँकि यह विधान मंडल द्वारा बनाए गए अधिनियम के अधीन स्थापित स्वायत्त निगमित निकाय (autonomous corporate body) है अतः अपने पहल और लचीलेपन की सहायता से अपने मामलों का प्रबंध स्वतंत्र रूप में करता है। यह नए क्षेत्रों में प्रयोग करता है, व्यावसायिक मामलों में पहल करता है तथा निजी उपक्रमों में पाए जाने वाले प्रचालन संबंधी लचीलेपन से लाभ उठाता है।

2) **लाल फीताशाही को दूर करना:** विभागीय प्रकार के संगठन में पाए जाने वाले फीताशाही तथा नौकरशाही जैसे दोषों को लोक निगम दूर करता है। सरकारी व्यवस्था अनेक प्रकार के नियमों, विनियमों तथा कार्यविधियों के अधीन होती है अतः उसमें व्यावसायिक कार्यों को कुशलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। विभागीय संगठनों की तुलना में लोक निगम अपने कार्यों के संबंध में शीघ्रता से निर्णय लेकर उचित कार्यवाही कर लेता है।

3) **पूँजी जुटाने में आसानी:** लोक निगम संरकार के स्वामित्व में सांविधिक (कानूनी) निकाय होते हैं। जब भी आवश्यक होता है तब ये अपेक्षाकृत कम दर की ब्याज वाले बांड जारी करके पूँजी की रकम जुटा लेते हैं। आम जनता बड़ी तत्परतापूर्वक इन बांडों को खरीद लेती हैं क्योंकि इसमें उसे खतरा नहीं दिखाई देती।

4) **जनहित की रक्षा होती है:** आप जानते ही हैं कि विभागीय संगठन की तुलना में लोक निगम राजनीतिक हस्तक्षेपों, संसदीय जाँच तथा विभागीय पाबंदियों और नियंत्रणों से मुक्त होता है। प्रशासन के मामले में बहुत कुछ स्वायत्त होने के बावजूद इसकी नीतियों पर संसदीय नियंत्रण बना रहता है। इससे जनहित की रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त लोक निगमों के निदेशक मंडल में विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्ति होते हैं, जैसे व्यवसाय के विशेषज्ञ तथा श्रमिकों और उपभोक्ताओं आदि के प्रतिनिधि, जिन्हें सरकार मनोनीत करती है। इस प्रकार किसी एक वर्ग के बदले में किसी अन्य वर्ग का शोषण नहीं हो पाता।

5) **सेवा भावना से कार्य:** लोक निगमों में मुनाफाखोरी, शोषण, अवैध सट्टा जैसे अवगुण नहीं होते जो निजी उद्यमों में अक्सर ही पाए जाते हैं। लोक निगमों का मुख्य उद्देश्य होता है आम जनता की सेवा करना। लाभ अर्जन तो गौण बात है। कुशलतापूर्वक

कार्य करने से इसमें बचत भी होती है, पर ऐसी बचत शोषण के फलस्वरूप नहीं होनी चाहिए। इस बचत का उपयोग उपभोक्ताओं और समुदाय के हित में होता है।

6) **कार्यकुशलता आती है:** लोक निगम अपने कर्मचारियों को अच्छी सुविधाएँ तथा नौकरी संबंधी आकर्षक शर्तें प्रदान करता है जिससे श्रम समस्याएँ कम हो जाती हैं, इस प्रकार इसमें कार्यकुशलता आती है।

7) **बड़े पैमाने की किफायतें प्राप्त होती हैं:** बड़े पैमाने पर उत्पादन और कारोबार होने के फलस्वरूप बड़े पैमाने की किफायतें होती हैं। इसके अतिरिक्त अनेक कंपनियों के एकीकरण के द्वारा प्रबंध में काफी किफायतें करना आसान हो जाता है। उदाहरणार्थ, बड़े–बड़े सरकारी उपक्रमों को यदि बैंकिग, बीमा, परिवहन, आदि जैसी स्वायत्त इकाइयों के रूप में गठित किया जाता है तब कम लागत पर ही प्रबंध में सुधार लाया जा सकता है तथा अधिक कुशल कर्मचारियों की सेवा, प्राप्त की जा सकती है।

7.5.3 दोष

आपने लोक निगम संगठन के गुणों के संबंध में पढ़ा। इन संगठनों में कुछ दोष भी होते हैं जिनके संबंध में नीचे अध्ययन किया जाएगा।

1) **स्वायत्तता (autonomy) की कमी:** विभागीय उपक्रमों की तुलना में लोक निगमों को अधिक स्वायत्तता प्राप्त होती है। फिर भी सरकार इनकी स्वायत्तता पर नियंत्रण रखती है। वह ऐसा उन क्षेत्रों में भी करती है जिनमें यह माना जाता है कि लोक निगम अपने कार्यों के लिए स्वतंत्र है। उदाहरणार्थ, भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India) और विभिन्न राज्यों के विद्युत बोर्ड (ये कानूनी निगम हैं) सरकार और जनता इन दोनों ही के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इनके अधिनियम के अनुसार उनको जितनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए उतनी केन्द्रीय और राज्य सरकारें उन्हें नहीं देतीं।

2) **लोचहीनता:** किसी लोक निगम की स्थापना विधान मंडल के विशेष अधिनियम के द्वारा होता है। इसके उद्देश्य और शक्ति में किसी भी प्रकार के परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक होता है कि. संसद या विधान मंडल अधिनियम में भी संशोधन करें। इसके फलस्वरूप यह निगम लोचहीन होने के साथ ही साथ बदलती हुई परिस्थितियों के प्रति असंवेदनशील भी हो जाता है।

3) **विरोधी हितों के बीच संघर्ष:** जैसा कि आप जानते हैं, निगमों का स्वामित्व सरकार के अधीन होता है और इनका प्रबंध निदेशक मंडल करता है, जिनकी नियुक्ति सरकार करती हैं। यह निदेशक मंडल जब विरोधी हितों का प्रतिनिधित्व करता है, तब हितों के बीच संघर्ष हो सकता है। इसके फलस्वरूप निगम के सुचारू रूप से चलने में रुकावट आ सकती है। कभी–कभी तो निदेशक कुछ गलत काम करके निगम की स्वायत्तता और अधिकार का दुरुपयोग करने लगते हैं। इससे निगम के सामाजिक उद्देश्य पर पानी फिर जाता है।

4) **व्यावसायिक सिद्धांतों की उपेक्षा:** लोक निगमों को किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ता। उनका निर्देशन न तो लाभ के प्रयोजन से होता है और न ही क्षति के भय से वे ग्रस्त होते हैं। इसलिए इस बात की संभावना रहती है कि उनकी कार्रवाइयों के दौरान व्यावसायिक सिद्धांतों की उपेक्षा कर दी जाए। ऐसा करने से निगमों में अदक्षता आ सकती है तथा इन्हें क्षति भी हो सकती है। इस क्षति की पूर्ति सरकार उन्हें आर्थिक सहायता देकर करती है।

5) **अत्यधिक सार्वजनिक जवाबदेही:** आप जानते हैं कि लोक निगमों का कार्य लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं बल्कि सेवा की भावना से होता है। उनकां इस प्रकार का सार्वजनिक उत्तरदायित्व कभी–कभी उनकी कार्यकुशलता में बाधा का काम करता है।

बोध प्रश्न 2

1) लोक निगम क्या है?

2) लोक निगम की क्या विशेषताएँ हैं?

3) खाली स्थानों को भरें।

   i) लोक निगम की समस्त पूँजी ..... द्वारा लगाई हुई होती है।

   ii) लोक निगम का निर्माण ..... का निर्माण ..... के द्वारा होता है।

   iii) लोक निगम का प्रबंध ..... द्वारा होता है।

4) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?

   i) लोक निगम के निदेशक मंडल के सदस्यों का चुनाव जनता करती है।

   ii) लोक निगम की पूँजी का कुछ अंश निजी उपक्रमियों द्वारा लगाया हुआ होता है।

   iii) लोक निगम आवश्यक पूँजी को स्वयं जुटा सकते हैं।

   iv) लोक निगम के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं।

   v) प्रति वर्ष संसद लोक निगम के बजट को स्वीकृति देती है।

   vi) लोक निगम के निदेशक मंडल के सदस्यों को संबंधित सार्वजनिक प्राधिकरण मनोनीत करते हैं।

   vii) लोकं निगम लाभ के प्रयोजन से काम करते हैं।

7.6 सरकारी कंपनी (Government Company)

इंडियन कंपनी ऐक्ट के अनुसार उस कंपनी को सरकारी कंपनी कहा जाता है जिसकी कुल प्रदत्त पूँजी (paid up capital) का 51 प्रतिशत या उससे अधिक भाग केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार, या अनेक राज्य सरकारों या अंशतः केन्द्रीय सरकार और अंशतः एक या अनेक राज्य सरकारों द्वारा लगाया हुआ होता है। ऐसी कंपनी की नियंत्रित कंपनी (subsidiary company) भी सरकारी कंपनी कही जाती है। इस प्रकार सरकारी कंपनी वह उपक्रम है जिसका प्रमुख शेयर होल्डर सरकार होती है, और जिस पर सबसे अधिक नियंत्रण सरकार के हाथ में होता है। सरकारी कंपनी का पंजीकरण इंडियन कंपनी ऐक्ट के अधीन होता है। जब सरकार किसी नई कंपनी की स्थापना के लिए रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनीज़ को दरख्वास्त देती है तब उसे उन सभी नियमों और कार्य विधियों का पालन करना होता है जो निजी व्यक्तियों पर भी लागू होते हैं। सरकारी कंपनी होने मात्र से ही उसे पंजीकरण संबंधी औपचारिकताओं को पूरा करने से छूट नहीं मिल पाती। अब तो एक और प्रकार की कंपनी बनने लगी है जिसकी पूँजी पर सरकारी और गैर–सरकारी (भारतीय और विदेशी) दोनों ही क्षेत्रों का स्वामित्व संयुक्त रूप से होता है। वह सरकारी कंपनी जिसके शेयर होल्डर सरकार तथा निजी उद्यम और व्यक्ति होते हैं, संयुक्त स्वामित्व कंपनी के नाम से जानी जाती है। भारत सरकार ने अनेक व्यावसायिक और औद्योगिक उपक्रमों को प्रायः प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में पंजीकृत और गठित किया है, हालांकि, इनके अधिकांश शेयरों के सरकार के स्वामित्व में होने के कारण ये सरकारी नियंत्रण और नियमन के अंतर्गत होती हैं।

इस संबंध में प्रश्न उठ सकता है कि व्यावसायिक उद्यमों को कंपनी के रूप में स्थापित करने के पीछे सरकार का क्या उद्देश्य होता है। निम्नलिखित कारणों से सरकार इनकी स्थापना कंपनी के रूप में करती है:

1) **लोक हित:** किन्हीं निजी उद्यमों के शेयरों को सरकार अपने हाथ में उस स्थिति में लेती है जब इनमें लाभ न हो रहा हो या ये वित्तीय संकट में हो। ऐसा वह देश के हित में करती है। इसके उदाहरण हैं – ईस्टर्न शिपिंग कार्पोरेशन तथा हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, जिन्हें सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है।

2) **संयुक्त स्वामित्व:** कभी–कभी तो किसी उपक्रम की स्थापना में सरकार निजी उद्यमों का सहयोग इसलिए लेती है कि उनसे पूँजी, तकनीकी जानकारी और विशेषज्ञ मार्गदर्शन प्राप्त हो सके। ऐसी स्थिति में सरकार संयुक्त पूँजी कंपनियों की स्थापना करती है। ऐसी कंपनियों के उदाहरण हैं – हिन्दुस्तान मशील टूल्स, हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, हेवी इन्जीनियरिंग कार्पोरेशन, हिन्दुस्तान केबुल्स आदि।

3) **औद्योगिक संवर्धन:** सरकार कभी–कभी कुछ कंपनियों की स्थापना औद्योगिक संवर्धन के लिए करती है। इन कंपनियों का निर्माण कार्य के साथ प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता, बल्कि उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रकों में व्यवसाय संगत परियोजनाओं की स्थापना में सहायक होगी। राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation) और राष्ट्रीय लघु–उद्योग निगम (National Small Scale Industries Corporation) इसके उदाहरण हैं।

4) **व्यापार या वाणिज्य का संवर्धन:** सरकार कुछ कंपनियों की स्थापना व्यापार या वाणिज्य के संवर्धन के लिए कर सकती है। राज्य व्यापार निगम (State Trading Corporation), निर्यात ऋण तथा गारंटी निगम (ECGC) आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।

5) **प्रेरणा का अभाव:** निजी उपक्रम अनेक तरह के उपक्रमों को शुरू नहीं करते। इसका कारण यह है कि इन उपक्रमों में दीर्घ समयावधि (longer gestation period), बड़ी रकम के निवेश, स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में लाभ के न होने जैसे खतरे होते हैं। ऐसी स्थिति में सरकार सरकारी कंपनियों की स्थापना करती है।

7.6.1 विशेषताएँ

सरकारी कंपनी की विशेषताएँ कानूनी, निगमों की विशेषताओं जैसी ही है। फिर भी इनके बीच एक मुख्य अंतर है। कानूनी निगम की स्थापना के लिए विधान मंडल (केन्द्र या राज्य) द्वारा बनाया गया अधिनियम आवश्यक होता है। परंतु सरकारी कंपनी की स्थापना के लिए इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इस अंतर के कुछ संवैधानिक अभिप्राय हैं। लोक निगम तथा सरकारी कंपनी के बीच के अंतर के संबंध में आप इसी इकाई के आगे के पृष्ठों में पढ़ेंगे। इन दोनों की अन्य विशेषताएँ लगभग एक जैसी हैं। सरकारी कंपनी की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1) **भारतीय कंपनी अधिनियम के अधीन स्थापित:** सरकारी कंपनी एक निगमित निकाय होती है, जिसकी स्थापना निजी क्षेत्र की अन्य संयुक्त पूँजी कंपनी के ही समान भारतीय कंपनी अधिनियम 1956 के अधीन होता है। इसके पंजीकरण सीमा नियम (memorandum), अंतर्नियमों (articles), बैठकों, पूँजी संरचना, लेखा, अंकेक्षण, आदि के संबंध में कंपनी अधिनियम के उपबंध (provisions) लागू होते हैं। फिर भी सरकार

यदि कंपनी अधिनियम के कुछ उपबंधों को हटाना या उनमें संशोधन करना चाहती है तो ऐसा वह विधान मंडल की स्वीकृति के साथ विशेष अधिसूचना (special notification) जारी करके कर सकती है।

2) **यह निगमित निकाय है:** सरकारी कंपनी का विधिक अस्तित्व (legal existence) होता है। यह एक कृत्रिम व्यक्ति है जिसकी कानूनी दृष्टि में अपना अलग अस्तित्व होता है। किसी जीवित व्यक्ति के ही समान अदालत में यह किसी पर मुकदमा दायर कर सकती है या इस पर भी कोई मुकदमा दायर कर सकता है, कोई संविदा कर सकती है और अपने नाम से कोई संपत्ति ले सकती है।

3) **पूँजी में निजी सहभागिता (Private participation) की गुंजाइश:** सरकारी कंपनी पर सरकार का पूर्णतः या अंशतः स्वामित्व हो सकता है। परंतु किसी भी स्थिति में सरकार के शेयर 51 प्रतिशत से कम नहीं होते। यदि इस पर सरकार का अंशतः स्वामित्व है तब इसमें निजी व्यक्ति भी (व्यक्ति तथा निगमित निकाय) पूँजी लगा सकते हैं। इस प्रकार पूँजी में निजी सहभागिता की गुंजाइश होती है।

4) **निदेशक मंडल द्वारा प्रबंध :** इसका प्रबन्ध निदेशक मंडल करता है। सभी निदेशकों या उनमें से अधिकतर की (जो इस बात पर निर्भर करता है कि निजी सहयोग कितना है) नियुक्ति सरकार करती है। बोर्ड बनाते समय सरकार टेक्नोक्रेटों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं, विदेशी सहयोगियों आदि के हितों को भी प्रतिनिधित्व दे सकती है।

5) **वित्तीय स्वतंत्रता:** सरकारी कंपनी अपनी वस्तुओं और सेवाओं के विक्रय से प्राप्त आय का उपयोग और पुनः उपयोग कर सकती है। आवश्यकता पड़ने पर वह वित्तीय संस्थाओं और आम जनता से उधार भी ले सकती है।

6) **स्वतंत्र कर्मचारी–भर्ती:** इसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। कंपनी इनकी नियुक्ति अपने ही निबंधन और शर्तो (terms and conditions) के अनुसार करती है।

7) **स्वतंत्र लेखाकरण और अंकेक्षण प्रणाली:** सरकारी विभागों पर लागू होने वाले लेखाकरण और अंकेक्षण संबंधी नियम सरकारी कंपनी पर लागू नहीं होते। इसकी लेखाकरण प्रणाली बहुत कुछ व्यावसायिक उद्यमों जैसी होती है और इसके लेखा परीक्षक चार्टर्ड एकाउटेंट होते हैं जिनकी नियुक्ति सरकार नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (CAG) की सलाह पर करती है।

8) **वार्षिक रिपोर्ट:** कंपनी अधिनियम के अनुसार इसके अंकेक्षण रिपोर्टों के साथ–साथ वार्षिक रिपोर्ट और लेखों को विधान मंडल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

7.6.2 सरकारी और गैर–सरकारी कंपनियों में भेद

सरकारी कंपनी और अन्य संयुक्त पूँजी कंपनियों, जिन्हें गैर–सरकारी कंपनी कहा जाता है, में कुछ अन्तर होते हैं जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है:

1) **प्रदत्त पूँजी:** सरकारी कंपनी की कम–से–कम 51% प्रदत्त शेयर पूँजी (paid up share capital) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या संयुक्त रूप से केन्द्रीय सरकार और एक या एक से अधिक राज्य सरकारों की होती है। केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा लगाई पूँजी का संयोजन अनेक प्रकार से हो सकता है फिर भी एक या एक से अधिक सरकारों के अधीन कुल प्रदत्त पूँजी कम–से–कम 51% होना आवश्यक होता है, जिससे कि इसका रूप सरकारी कंपनी बना रहे। यह उल्लेखनीय है कि कुछ सरकारी

कंपनियों की इक्विटी में निजी सहभागिता भी होती है। गैर–सरकारी कंपनियों की प्रदत्त पूँजी का अधिकांश भाग गैर–सरकारी व्यक्तियों द्वारा लगाया हुआ होता है।

2) **अंकेक्षक (auditor) की नियुक्तिः** सरकारी कंपनियों के अंकेक्षक की नियुक्ति नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (CAG) की सलाह पर होती है। उसे यह भी अधिकार होता है कि वह अंकेक्षकों को हिदायत दे और उन्हें यह बताए कि कंपनी का अंकेक्षण किस प्रकार का होना चाहिए। कभी–कभी नियंत्रक और महालेखा परीक्षक सरकारी कंपनियों का अंकेक्षण कंपनी अधिनियम के अंतर्गत स्वयं ही करता है। गैर–सरकारी कंपनी के अंकेक्षक की नियुक्ति कंपनी की साधारण सभा (general body) करती है।

3) **वार्षिक रिपोर्टः** केन्द्रीय सरकार की कंपनी के वार्षिक रिपोर्ट तथा अंकेक्षण रिपोर्ट संसद के सामने तथा राज्य सरकार की कंपनी के, ये रिपोर्ट राज्य विधान मंडल के सामने रखे जाते हैं। गैर–सरकारी कंपनी का अंकेक्षण रिपोर्ट इसकी साधारण सभा के सामने रखा जाता है।

4) **कंपनी अधिनियम के उपबंधः** केन्द्रीय सरकार को यह घोषित करने का अधिकार है कि कंपनी अधिनियम के अंतर्गत अंकेक्षण संबंधी उपबंधों के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपबंध किसी सरकारी कंपनी पर लागू नहीं होगा। परंतु गैर–सरकारी कंपनियों पर लागू होने वाले कंपनी अधिनियम के उपबंधों के संबंध में केन्द्रीय सरकार ऐसी कोई कार्यवाही नहीं करती।

7.6.3 गुण

सार्वजनिक उद्यमों में सरकारी कंपनी प्रकार के संगठन के अर्थ और उसकी विशेषताओं के संबंध में आप पढ़ चुके हैं। अब हम इस प्रकार के संगठन के गुणों के संबंध में विचार करेंगे। सरकारी कंपनी के निम्नलिखित गुण हैं:

1) **इसका गठन सरल हैः** भारत के अधिकतर सार्वजनिक उद्यम संयुक्त पूँजी कंपनी के रूप में हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इस प्रकार की कंपनी बनाना सरकार के लिए आसान होता है। जब भी किसी नए कार्य की शुरुआत की आवश्यकता होती है, तब सरकार एक नई कंपनी बना सकती है। इसके लिए विधान मंडल से किसी बिल को पास कराने की जरूरत नहीं पड़ती, जैसा कि किसी सांविधिक निगम की स्थापना के संबंध में करना होता है।

2) **संविधान में परिवर्तन करना आसान होता हैः** सरकार इसे इसलिए पसंद करती है कि अंतर्नियमों में संशोधन के द्वारा संविधान में परिवर्तन करना आसान होता है। अधिकतर कंपनियों पर सरकार का पूर्ण स्वामित्व होता है। एकमात्र शेयर होल्डर होने के नाते सरकार को पूर्ण अधिकार होता है कि जब भी आवश्यक हो तब वह बैठकें बुलाकर कंपनी के अंतर्नियमों में संशोधन तथा संकल्पों को पास करा ले।

3) **चालू उद्यम को अपने अधीन लेना आसान होता जाता हैः** किसी चालू उद्यम की शेयर पूँजी के अधिकांश भाग को प्राप्त करके सरकार उसे अपने अधीन कर लेती है और उसे सरकारी कंपनी का रूप दे देती है। उदाहरणार्थ, बर्मा शेल ग्रुप की कंपनियों की इक्विटी. को लेकर सरकार ने उनका नाम भारत पेट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड कर दिया जो आज सरकारी कंपनी के रूप में कार्य कर रहा है। इसी प्रकार निजी क्षेत्रक के लगभग एक दर्जन और कंपनियों को अपने अधीन करके सरकार उन्हें सरकारी कंपनी के रूप में चला रही है। इनमें से कुछ के नाम बदल दिए गए हैं और कुछ के पहले ही जैसे हैं।

4) **निजी सहभागिता में सुविधाः** इस प्रकार के संगठन से सार्वजनिक उद्यमों की इक्विटी में निजी सहभागिता का होना आसान हो जाता है। सरकार यदि चाहे तो वह सरकारी कंपनी की इक्विटी के कुछ अंश को जनता के बीच बेचकर ऐसा बड़ी आसानी से कर सकती है।

5) **स्वामित्व का हस्तांतरण करना आसान होता है :** संगठन के सरकारी कंपनी के रूप में होने से सार्वजनिक उद्यम को बेचना आसान होता है। शेयरों की कीमत तय होते ही इन शेयरों को निजी पार्टियों को बेचकर कंपनी का स्वामित्व बड़ी आसानी से हस्तांतरित कर दिया जाता है।

6) **अधिक स्वायत्तताः** इसमें लोक निगम प्रकार के संगठन के प्रायः सभी गुण होते हैं। इसके पास अपना चार्टर, प्रचालन की स्वायत्तता (autonomy of operation), वित्तीय मामलों में आत्मनिर्भरता तथा कार्मिक मामलों में स्वतंत्रता होती है।

7) **प्रचालन में लचीलापन :** आप जानते हैं कि सरकारी कंपनी के कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। अतः विभागीय प्रकार के संगठनों के लाल फीताशाही तथा नौकरशाही जैसे दोषों से बचना आसान हो जाता है। इस प्रकार सरकारी कंपनी अपने व्यावसायिक मामलों में तुरंत निर्णय और कार्यवाही करने की स्थिति में होती है।

7.6.4 दोष

सरकारी कंपनी के रूप में संगठन के निम्नलिखित दोष हैंः

1) **संवैधानिक दायित्व से बचनाः** सरकारी कंपनी की स्थापना संसद की स्वीकृति लिए बिना ही की जा सकती है। इसके निर्माण के कारणों और उसके संविधान के संबंध में संसद में विचार नही किया जाता। इस प्रकार सरकारी कंपनी संवैधानिक दायित्व से बच जाती हैं।

2) **सरकारी हस्तक्षेपः** सरकार अधिकतर सरकारी कंपनियों की एकमात्र शेयर होल्डर होती है, इस नाते जब भी आवश्यक होता है, वह किसी कंपनी के सीमा नियम और अंतर्नियम में संशोधन कर सकती है। इस प्रकार जनता के बीच किसी प्रकार का विचार–विमर्श किए बिना हीं, जो कानूनी निगम की स्थिति में आवश्यक होता है, सरकारी कंपनी के संविधान में परिवर्तन किया जा सकता है। इससे कंपनी की स्वायत्तता पर असर पड़ सकता है।

3) **सार्वजनिक जवाबदेही का भयः** सरकारी कंपनी के निदेशकों और उच्च अधिकारियों को सदा ही सार्वजनिक उत्तरदायित्व का भय बना रहता है। इस कारण किसी नए क्षेत्र में पहल करने तथा कोई नया कार्य करने में उन्हें हिचक होती है।

4) **जनता के बीच आलोचनाः** संबद्ध मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट में सरकारी कंपनी के कार्यों का उल्लेख रहता है। इस रिपोर्ट को संसद् या राज्य विधान मंडल के सामने रखा जाता है। इस प्रकार यह रिपोर्ट सार्वजनिक दस्तावेज बन जाती है, जिससे सरकारी कंपनी की जनता के बीच आलोचना हो सकती है।

5) **पेशेवर प्रबंधक वर्ग का अभावः** जैसा कि आप जानते हैं सरकारी कंपनी के निदेशकों की नियुक्ति प्रायः सरकार करती है। इस कारण निजी क्षेत्रक के उद्यमों में पाई जाने वाली व्यावसायिक दक्षता सरकारी कंपनियों में नहीं आ पाती।

बोध प्रश्न 3

1) सरकारी कंपनी किसे कहते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) खाली स्थानों को भरें।

i) ..... सरकारी कंपनी के लेखा परीक्षकों की नियुक्ति ..... की सलाह पर करती है।

ii) सरकारी कंपनी होने के लिए प्रदत्त पूँजी में सरकार का हिस्सा कम से कम . ..... होना आवश्यक होता है।

iii) भारत में अधिकतर सार्वजनिक उद्यमों का गठन ..... के रूप में होता है।

iv) सरकारी कंपनी का निर्माण ..... अधिनियम के अधीन होता है।

v) सरकारी कंपनी का प्रबंध ..... द्वारा होता है।

3) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत हैं?

i) भारतीय सामान्य जीवन बीमा निगम सरकारी कंपनी है।

ii) सरकारी कंपनी निगमित निकाय (corporate body) होती है।

iii) सरकार को अधिकार होता है कि वह सरकारी कंपनी का संचालन मनमाने ढंग से करे।

iv) सरकारी कंपनियों के लिए आवश्यक सम्पूर्ण राशि की व्यवस्था सरकार करती है।

v) सरकारी कंपनी अपने कर्मचारियों की नियुक्ति सरकार से सलाह किए बिना कर सकती है।

vi) जिस कंपनी के 51 या उससे अधिक शेयर सरकार के स्वामित्व में होते हैं वह सरकारी कंपनी कही जाती है।

vii) कंपनी अधिनियम के कुछ उपबंधों को सरकारी कंपनियों पर लागू होने के संबंध में सरकार उन्हें छूट दे सकती है।

7.7 संगठन के रूपों की तुलना

संगठन के तीन रूपों यानी विभागीय संगठन, लोक निगम और सरकारी कंपनी में से प्रत्येक की विशेषताओं और उनके दोषों के संबंध में पहले ही विचार किया जा चुका है। अब हम इन तीनों की विशेषताओं की तुलना करेंगे और जानने का प्रयास करेंगे कि दी हुई स्थिति में कौन–सा रूप अधिक उपयुक्त होगा। तालिका 17.1 में इन तीनों की विशेषताएँ संक्षेप में दी गई हैं।

तालिका 7.1: सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के तीन रूपों का तुलनात्मक अध्ययन

क्रं	आधार	विभागीय संगठन	लोक निगम	सरकारी कंपनी
1	निर्माण	इसकी स्थापना सरकार करती है और यह किसी विशेष मंत्रालय से संबद्ध होता है।	विधान मंडल के विशेष अधिनियम के अधीन इसकी स्थापना होती है।	मंत्रालय इसकी स्थापना कंपनी अधिनियम के अधीन करता है।
2	विधिक अस्तित्व	अलग से विधिक अस्तित्व नहीं होता।	इसका पृथक् विधिक अस्तित्व होता है।	इसका पृथक् विधिक अस्तित्व होता है।
3	प्रबन्ध	सरकार का संबद्ध मंत्रालय इसका प्रबंध करता है।	इसका प्रबंध निदेशक मंडल द्वारा होता है, जिसे सरकार मनोनीत करती है।	इसका प्रबंध निदेशक मंडल द्वारा होता है जिसमें सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य और शेयरहोल्डरों द्वारा निर्वाचित सदस्य होते हैं।
4	पूँजी	इसकी समस्त पूँजी की व्यवस्था सरकार बजट विनियोजन से करती है।	समस्त पूँजी सरकार लगाती है।	कम से कम 51% पूँजी सरकार द्वारा लगाई गई होती है।
5	निजी सहभागिता की गुंजाइश	निजी सहभागिता की कोई गुंजाइश नहीं होती।	निजी सहभागिता की कोई गुंजाइश नहीं होती।	इसकी शेयर पूँजी में और इसके मामले में भी निजी (राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय) सहभागिता की गुंजाइश होती है।
6	प्रचालन स्वायत्तता	स्वायत्तता (autonomy) कम से कम होती है या बिल्कुल ही नहीं होती। सरकार के अनिवार्य अंग के रूप में कार्य करता है।	अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत स्वायत्त निकाय के रूप में कार्य करता है। इसे काफी हद तक स्वतंत्रता प्राप्त होती है क्योंकि इसके दिन–प्रतिदिन के कार्यों में सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता।	निजी उद्यम के समान इसका संचालन व्यावसायिक सिद्धांतों के अनुसार होता है तथा सरकारी हस्तक्षेप से इसे कुछ हद तक स्वतंत्रता होती है।
7	लचीलापन	इस पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है। इस पर बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण संबंधी सरकारी प्रक्रियाएँ लागू होती हैं।	इस पर सरकार का कुछ नियंत्रण होता है। इस पर बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण संबंधी सरकारी प्रक्रियाएँ लागू नहीं होती हैं।	सरकारी नियंत्रण से कुछ हद तक स्वतंत्र होती है। बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण संबंधी सरकारी प्रक्रियाएँ लागू नहीं होतीं।
8	सार्वजनिक उत्तरदायित्व	संबद्ध मंत्री विधान मंडल के प्रति उत्तरदायित्व होते हैं।	विधान मंडल के द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी होता है।	सरकार और संबद्ध मंत्रालय जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
9	वित्त व्यवस्था और उधार लेने की शक्ति	केवल बज़ट विनिधान (budgetary allocation) होता है। इसके पास उधार लेने की शक्ति नहीं होती। इसकी आय को सरकारी खजाने में जमा कर दिया जाता है।	यह स्वयं ही अपनी वित्त व्यवस्था करता है तथा इसके पास उधार लेने की शक्ति भी होती है। इसे अपनी आय का उपयोग करने का भी अधिकार होता है।	यह स्वयं ही अपनी वित्त व्यवस्था करती है तथा इसके पास उधार लेने की शक्ति भी होती है। इसे अपनी आय का उपयोग करने का अधिकार होता है।
10	कर्मचारी भर्ती तथा सेवा की शर्ते	इसके कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं और उन पर सिविल सेवा संहिता लागू होती हैं।	इसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। इन पर लोक निगम की सेवा संहिता लागू नहीं होती है।	इसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। इन पर सरकारी कंपनी की सेवा संविदा लागू होती है।

इन तीन प्रकार के संगठनों की विशेषताओं के बीच तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि विधान–मंडल के प्रति उत्तरदायित्व और सरकारी नियंत्रण, विभागीय संगठन में अधिकतम और सरकारी कंपनी में न्यूनतम होते हैं। कर्मचारी, भर्ती, वित्त व्यवस्था और दिन–प्रतिदिन के प्रचालन (operation) के संबंध में विभागीय प्रकार के संगठन को कम से कम स्वायत्तता होती है जबकि कंपनी प्रकार के संगठन के पास यह अधिकतम होती है। उसी प्रकार विभागीय संगठन कम से कम लचीला होता है जबकि सरकारी कंपनी अधिकतम लचीली होती है। लोक निगम और सरकारी कंपनी की मुख्य विशेषताएँ लगभग एक जैसी होती हैं। इन दोनों के कार्य–संचालन में शायद ही कोई अंतर होता है। उदाहरणार्थ, भारतीय जीवन बीमा निगम सांविधिक निगम है, और भारतीय सामान्य बीमा निगम सरकारी कंपनी है, परंतु इन दोनों के ही कार्य–संचालन और प्रबंध एक जैसे हैं। लोक निगम और सरकारी कंपनी के बीच मुख्य अंतर यह है कि इनमें से पहले की स्थापना विधान मंडल के विशेष अधिनियम के द्वारा होती है जबकि दूसरे का निगमन (incorporation) विधान मंडल का आश्रय लिए बिना ही कंपनी अधिनियम के अधीन होता है। सरकारी कंपनी की पूँजी और प्रबंध में निजी सहभागिता (private participation) की गुंजाइश होती है परंतु लोक निगम के संबंध में ऐसा नहीं होता। इसके अतिरिक्त कंपनी प्रकार का संगठन संसदीय नियंत्रण से बच जाता है।

संगठन के इन तीन रूपों की विशेषताओं के तुलनात्मक मूल्यांकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक और व्यावसायिक उपक्रमों के लिए कंपनी के रूप का संगठन सर्वाधिक उपयुक्त होता है जबकि लोकोपयोगी उपक्रमों के लिए सांविधिक निगम ठीक रहता है। औद्योगिक और व्यावसायिक उद्यमों को यदि कुशलतापूर्वक चलाना है तो आवश्यक है कि प्रबंध को अधिकतम स्वायत्तता दी जाए और प्रबंधक पेशेवर व्यक्ति हों। इनके दिन–प्रतिदिन के कार्यों में मंत्रालय या संसद की ओर से हस्तक्षेप कम से कम होना चाहिए। इसके अतिरिक्त नीति निर्धारण तथा कार्यविधियों के संबंध में नम्य दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। कंपनी की तरह के संगठन में इन आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत कुछ इसलिए हो जाती है कि कंपनियों का विधिक अस्तित्व होता है तथा इनकी नीतियों और कार्यविधियों में परिवर्तन के लिए संसद की स्वीकृति आवश्यक नहीं होती। इसके विपरीत लोकोपयोगी सेवाओं को कानूनी निगम के रूप में गठित करना इसलिए उचित होता है कि उनका स्वरूप एकाधिकारी होता है तथा उनकी दायरों पर सरकार का कड़ा नियंत्रण होना आवश्यक होता है।

कुछ सरकारी संगठन प्रायः अपने नाम के साथ निगम (राज्य व्यापार निगम), कंपनी (हिन्दुस्तान फोटोफिल्म्ज मैनुफैक्चरिंग कंपनी), प्राधिकरण (भारतीय इस्पात प्राधिकरण लि) और आयोग (तेल और प्राकृतिक गैस आयोग) जैसे शब्दों को लगाते हैं। लेकिन ऐसा करने का कोई कानूनी आशय नहीं होता। इन शब्दों से यह पता नहीं चलता कि इनके गठन का रूप क्या है। उदाहरणार्थ, निगम शब्द सांविधिक निगमों के साथ लगता है और सरकारी कंपनियों के साथ भी। जीवन बीमा निगम सांविधिक निगम है, जब कि सामान्य बीमा निगम सरकारी कंपनी है। इस प्रकार हम देखते हैं नाम के साथ इन शब्दों के होने से ही सांविधिक निगम और सरकारी कंपनी में अंतर नहीं किया जा सकता।

सरकारी कंपनियों के नाम के साथ प्रायः लिमिटेड शब्द जुड़ा होता है। कुछ हद तक इसी शब्द के द्वारा सांविधिक निगम और सरकारी कंपनी के बीच भेद किया जाता है। परंतु इसके भी कुछ अपवाद हैं। यदि कंपनी का रजिस्ट्रीकरण कंपनी अधिनियम के सेक्शन 25 के अंतर्गत हुआ है तो उसके लिए अपने नाम के साथ "लिमिटेड' शब्द जोड़ना आवश्यक नहीं होता। ऐसा इसलिए कि इन कंपनियों की स्थापना केवल सांस्कृतिक, सामाजिक और

अव्यावसायिक कार्यों के लिए की जाती है। अपने सदस्यों को, ये लाभांश नहीं देतीं तथा अपनी आय का उपयोग ये कुछ विशेष उद्देश्यों के लिए करती हैं। इस देश में चार केन्द्रीय सरकारी कंपनियाँ हैं। उनके नाम हैं (1) भारत का राष्ट्रीय अनुसंधान विकास निगम (National Research Development Corporation of India) (2)–इंडियन डेरी कार्पोरेशन, (3) भारतीय व्यापार मेला प्राधिकरण (Trade Fair Authority of India), और (4) आर्टिफिशियल लिम्ब मैनुफैक्चरिंग कार्पोरेशन ऑफ इंडिया। कंपनी अधिनियम के अंतर्गत निगमित होने के बावजूद ये कंपनियाँ अपने नाम के साथ "लिमिटेड" शब्द को नहीं लगातीं।

बोध प्रश्न 4

1) खाली स्थानों को भरें।

   i) ..... का निर्माण विधानमंडल के विशेष अधिनियम के द्वारा होता है तथा ..... का निगमन कंपनी अधिनियम के अंतर्गत होता है।

   ii) संगठन के अन्य रूपों की अपेक्षा ..... रूप नौकरशाही प्रणाली के अधिक निकट होता है।

   iii) ..... की पूँजी में निजी सहभागिता की गुंजाइश होती है।

   iv) ..... प्रकार के संगठन पर सरकार की बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण कार्यविधियाँ लागू होती हैं।

2) निम्नलिखित में से कौन से कथन सही हैं और कौन से गलत?

   i) व्यवहार रूप में लोक निगम और सरकारी कंपनी के बीच कोई अंतर नहीं होता।

   ii) लोक निगम और सरकारी कंपनी निगमित निकाय हैं।

   iii) संगठन के अन्य रूपों की तुलना में विभागीय संगठन के पास अधिक वित्तीय स्वायत्तता होती है।

   iv) सार्वजनिक उद्यम के नाम के साथ "निगम" तथा "कंपनी' लगे होने से पता चलता है कि ये संगठन के भिन्न रूप हैं।

   v) विभागीय संगठन की तुलना में लोक निगम के पास प्रचालन स्वायत्तता (operational autonomy) अधिक होती है।

7.8 सारांश

सार्वजनिक उद्यमों में संगठन के तीन रूप होते हैं: (1) विभागीय संगठन, (2) लोक निगम और (3) सरकारी कंपनी।

विभागीय प्रकार के संगठन में उद्यम का गठन, वित्त व्यवस्था और नियंत्रण सरकारी विभाग जैसा ही होता है। इसका कुल नियंत्रण संबद्ध मंत्री के हाथ में होता है और इसके कुशल संचालन के लिए वह विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है। इसकी वित्त व्यवस्था विधान मंडल द्वारा किए गए वार्षिक बजट विनियोजन से होती है और इसकी आय को सरकारी खजाने में जमा किया जाता है। अन्य सरकारी विभागों पर लागू होने वाले बजट, लेखाकरण और अंकेक्षण नियंत्रण इस पर भी लागू होते हैं। इस संगठन के कर्मचारी सरकारी नौकर होते हैं।

विभागीय संगठन के लाभ इस प्रकार हैं : चूँकि विधान मंडल के प्रति यह पूर्णतः उत्तरदायी होता है, अतः इसके कार्यों पर सरकार का अधिकतम नियंत्रण होता है। इस कारण

लोक–निधि के दुरुपयोग की गुंजाइश कम होती है। सरकार विभागीय उपक्रमों को अपनी सामाजिक और आर्थिक नीति का साधन बना सकती है। इनकी बचतों को सरकार राष्ट्र की आर्थिक प्रगति के कार्यों में लगा सकती है। विभागीय संगठन के कुछ दोष भी हैं, जैसे इनमें नौकरशाही और लाल फीताशाही का होना, विधान मंडल का इन पर अत्यधिक नियंत्रण, राजनीतिक अस्थिरता का शिकार बने रहना, इनमें पेशेवर निपुणता की कमी, लोचदार न होना, वित्तीय मामलों में स्वायत्तता की कमी और प्रतिस्पर्धा तथा लाभ की प्रेरणा का अभाव।

लोक निगम निगमित निकाय होता है जिसका निर्माण संसद या राज्य विधान मंडल द्वारा बनाए गए विशेष अधिनियम के द्वारा होता है, जिसमें शक्तियों, कर्तव्यों, कार्यों, छूटों और प्रबंध के स्वरूप का स्पष्टीकरण होता है। इसे कानूनी निगम भी कहा जाता है। यह निगम पूर्णतः सरकार के स्वामित्व में होता है और इसकी समस्त पूँजी सरकार द्वारा लगाई हुई होती है। इसका प्रबंध सरकार द्वारा मनोनीत निदेशक मंडल करता है। इसके कर्मचारी सरकारी नौकर नहीं होते। यह विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है, जो इसका निर्माण करता है। फिर भी विधान मंडल से अपेक्षा की जाती है कि वह लोक निगम के दिन–प्रतिदिन के संचालन में हस्तक्षेप न करे।

लोक निगम प्रकार के संगठन के गुण इस प्रकार हैं : स्वायत्त निगमित निकाय (autonomous corporate body) होने के नाते यह पहल तथा लचीलेपन के साथ स्वतंत्र रूप से अपने मामलों का प्रबंध कर सकता है, तथा लाल फीताशाही से बच सकता है। चूंकि इसके पास वित्तीय स्वतंत्रता होती है, अतः जब भी आवश्यक हो तब वह आसानी से पूँजी जुटा सकता है। चूंकि यह सेवा की भावना से कार्य करता है तथा विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है, अतः लोक हित की रक्षा करता है तथा मुनाफाखोरी, शोषण, अवैध सट्टा आदि दोषों से बचा रहता है। इसके चलते कार्यकुशलता आती है तथा बड़े पैमाने की किफायतें प्राप्त होती हैं। लोक निगमों के दोष हैं – सरकार की ओर से अत्यधिक हस्तक्षेप, नीति संबंधी मामलों में लोचहीनता, निदेशक मंडल के सदस्यों के बीच हित का संघर्ष, अत्यधिक सार्वजनिक उत्तरदायित्व तथा व्यावसायिक सिद्धांतों की उपेक्षा।

सरकारी कंपनी निगमित निकाय होती है जिसका रजिस्ट्रीकरण इंडियन कंपनी ऐक्ट के अधीन होता है। तथा जिसकी कुल प्रदत्त पूँजी (paid-up-capital) का कम से कम 51 प्रतिशत केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या अनेक राज्य सरकारों या अंशतः केन्द्रीय सरकार और अंशतः एक या अनेक राज्य सरकारों द्वारा लगाया हुआ होता है। ऐसी कंपनी की नियंत्रित कंपनी (subsidiary company) भी सरकारी कंपनी कही जाती है। सरकारी कंपनी की स्थापना के लिए सरकार के लिए आवश्यक होता कि वह विधान मंडल से स्वीकृति ले। इस प्रकार के संगठन की पूँजी तथा प्रबंध में निजी सहभागिता की भी गुंजाइश होती है। इसका प्रबंध निदेशक मंडल करता है, जिसमें सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य तथा जिस कंपनी में निजी शेयरधारी भी होते हैं, उसके निदेशक मंडल में उनके द्वारा निर्वाचित सदस्य होते हैं। इसमें वित्तीय स्वायत्तता तथा स्वतंत्र कर्मचारी भर्ती प्रणाली होती है। विभागीय संगठनों पर लागू होने वाले लेखाकरण (accounting), अंकेक्षण (auditing) तथा बजट नियंत्रण इस पर लागू नहीं होते।

सरकारी कंपनी से मुख्य लाभ यह है कि एक ओर तो यह विभागीय संगठन के सभी अवगुणों से बचती है और दूसरी ओर लोक निगम के सभी गुणों को लाती है। सरकारी कंपनी को गठित करना तथा आवश्यकता पड़ने पर उसके संविधान में परिवर्तन करना आसान होता है। इसकी पूँजी और प्रबंध में निजी सहभागिता की गुंजाइश होती है। किसी चालू उद्यम को सरकार के अधीन करने या स्वामित्व को निजी उद्यमकर्ताओं को हस्तांतरित करने का काम आसान हो जाता है। वित्तीय, कर्मचारी भर्ती और लेखा संबंधी मामलों में

स्वायत्त होने के कारण इसमें प्रचालन संबंधी लचीलापन अधिक होता है। सरकारी कंपनी का मुख्य दोष यह है कि यह संसदीय जाँच–पड़ताल से बची रहती है। अन्य दोष हैं – व्यावसायिक प्रबंध का अभाव, सरकारी हस्तक्षेप तथा इसके उच्च अधिकारियों के बीच सार्वजनिक जवाबदेही का भय।

सार्वजनिक उद्यमों के तीनों रूपों की विशेषताओं के तुलनात्मक मूल्यांकन से पता चलता है कि विभागीय प्रकार का संगठन उन उपक्रमों के लिए उपयुक्त होता है जो जनहित और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं। कंपनी प्रकार का संगठन व्यावसायिक और औद्योगिक उपक्रमों के लिए उपयुक्त होता है, जबकि लोकोपयोगी उपक्रमों के लिए लोक निगम को ठीक समझा जाता है।

7.9 शब्दावली

स्वायत्तता (Autonomy): सार्वजनिक उद्यम के संदर्भ में स्वायत्तता शब्द से अभिप्राय होता है किसी प्रकार के राजनीतिक हस्तक्षेप के बिना स्वतंत्र रूप से प्रबंधन, नीति–निर्धारण और नीतियों को कार्यान्वित करना।

निगमित निकाय (corporate body): वह संगठन जिसका विधिक अस्तित्व हो और जिसका निर्माण विधान मंडल के अधिनियम के द्वारा या कंपनी अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकरण के द्वारा हो।

विभागीय संगठन (Departmental organisation): संगठन का एक रूप जिसमें किसी सार्वजनिक उद्यम का संगठन, वित्त व्यवस्था तथा नियंत्रण किसी सरकारी विभाग के ही समान किया जाता हो।

सरकारी कंपनी (Government company): भारतीय कंपनीज़ अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई कंपनी जिसकी कम से कम 51 प्रतिशत प्रदत्त पूँजी केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या अनेक राज्य सरकारों या अंशतः केन्द्रीय सरकार और अंशतः एक या अनेक राज्य सरकारों द्वारा लगाई गई हो।

संयुक्त स्वामित्व कंपनी (Mixed ownership company): वह उद्यम जिसकी पूँजी सरकार और निजी हितों (भारतीय या विदेशी) के संयुक्त स्वामित्व में हो।

सार्वजनिक जवाबदेही (Public accountability): संसद या राज्य विधान मंडलों के द्वारा जनता के प्रति सार्वजनिक उद्यमों की जवाबदेही।

लोक निगम (Public corporation): संसद या राज्य विधान मंडल के विशेष अधिनियम द्वारा निर्मित स्वायत्त निगमित निकाय, जिसके कार्यों और शक्तियों का स्पष्टीकरण कर दिया गया हो।

भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक (Comptroller and Auditor General of India): सरकारी संगठनों के लेखा के अंकेक्षण के लिए भारत के संविधान अधीन एक प्राधिकारी।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 3) (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) सही (vi) गलत (vii) सही (viii) गलत

2. 3) (i) सरकार (ii) विधान मंडल के विशेष अधिनियम (iii) निदेशक मंडल

   4) (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) गलत (vi) सही (vii) गलत

3. 2) i) सरकार, भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक

   ii) 51

   iii) संयुक्त पूँजी कंपनियों

   iv) भारतीय कंपनी

   v) निदेशक मंडल

   3) (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v) सही (vi) सही (vii) सही

4. 1) i) सांविधिक निगम, सरकारी कंपनी

   ii) विभागीय संगठन

   iii) सरकारी कंपनी

   iv) विभागीय

   2) (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v) सही

7.11 स्वपरख प्रश्न

1) सार्वजनिक उद्यमों में संगठनों के क्या रूप होते हैं? प्रत्येक रूप की विशेषताएँ बताइये।

2) सांविधिक निगम क्या है? उसकी विशेषताओं, गुणों और दोषों को स्पष्ट कीजिए।

3) सरकारी कंपनी क्या है? सरकारी कंपनी और गैर–सरकारी कंपनी के बीच अन्तर बताइये।

4) सरकारी कंपनी की क्या मुख्य विशेषताएँ होती हैं? सांविधिक निगम की विशेषताओं से ये किस रूप में भिन्न होती हैं?

5) सरकारी कंपनी क्या है? इसकी विशेषताओं, गुणों और दोषों का वर्णन कीजिए।

6) विभागीय संगठन किसे कहते हैं? इस संगठन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। इस प्रकार का संगठन लोकप्रिय क्यों नहीं होता?

7) कंपनी संगठन और सांविधिक निगम के बीच तुलना कीजिए। आपके विचार से सार्वजनिक उद्यमों के प्रबंध कार्य के लिए इनमें से कौन और क्यों उपयुक्त होगा?

नोटः इन प्रश्नों से आपको इस इकाई को भलीभाँति समझने में मदद मिलेगी। इनका उत्तर लिखने का प्रयास करें। लेकिन उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 8 अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय : बहुराष्ट्रीय निगम

इकाई की रुपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की परिभाषा

8.3 अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का महत्व

8.4 बहुराष्ट्रीय निगम की परिभाषा

8.5 फर्में बहुराष्ट्रीय क्यों हो जाती हैं?

8.6 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएं

8.7 बहुराष्ट्रीय निगमों के वर्तमान प्रवृत्ति

8.8 बहुराष्ट्रीय निगमों के मुद्दे तथा विवाद

8.9 बहुराष्ट्रीय निगमों के भारतीय परिप्रेक्ष्य

8.10 सारांश

8.11 शब्दावली

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.13 स्वपरख प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की परिभाषा दे सकें
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व को समझा सकें
- फर्में बहुराष्ट्रीय क्यों हो जाती हैं बता सकें,
- बहुराष्ट्रीय निगम की परिभाषा दे सकें
- बहुराष्ट्रीय निगम के विशेषताओं का वर्णन कर सकें,
- बहुराष्ट्रीय निगमों के वर्तमान प्रवृत्ति की व्याख्या कर सकें
- बहुराष्ट्रीय निगमों के मुद्दों तथा विवादों की व्याख्या कर सकें, और
- बहुराष्ट्रीय निगमों के भारतीय परिप्रेक्ष्य की विवेचना कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

सामान्य शब्दों में व्यवसाय तथा उससे संबंधित क्रियाओं का देश से बाहर संचालन किया जाना, अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय कहलाता है। बहुराष्ट्रीय निगमें वैश्वीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संचालन वैश्वीकरण का एक महत्वपूर्ण भाग है। फर्म के विभिन्न देशों में संचालन ने ही बहुराष्ट्रीय निगम की उद्गमन की है। बहुराष्ट्रीय निगम वस्तुओं और सेवाओं दोनों के अन्तर्राष्ट्रीय संचालन में कार्यरत होते है।

इस इकाई में आप अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की परिभाषा और महत्व तथा फर्में क्यों बहुराष्ट्रीय हो जाती हैं? इसके बारे में अध्ययन करेंगें। आप बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएँ, बहुराष्ट्रीय निगमों के वर्तमान प्रवृत्ति, मुद्दे और विवाद तथा इसके भारतीय परिप्रेक्ष्य का अध्ययन भी करेंगें।

8.2 अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय की परिभाषा

आप जानते हैं कि ज्ञान व्यावसायिक उद्यम का महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति माना जाता है। अधिकांश व्यावसायिक उद्यमें ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहते हैं। किस प्रकार उपभोक्ता के लिए श्रेष्ठ वस्तु या सेवा का उत्पादन किया जाये यह व्यावसायिक उद्यम के लिए प्रमुख चुनौती बना हुआ है। व्यावसायिक उद्यम अनुसंधान और विकास के लिए अभिप्रायपूर्ण रकम निवेश करते हैं ताकि वे नए वस्तु व सेवा, नई प्रक्रिया की खोज कर सकें। नई प्रक्रिया की खोज व्यावसायिक उद्यम को देश के सीमा से बाहर संचालन करने में सहायक होती है। इस प्रकार अनुसंधान और विकास, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन, निवेश, उत्पादन और व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के सुचारू रूप से संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वास्तव में वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय के चालक हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय क्या है? सामान्य शब्दों में "व्यवसाय और इससे सम्बन्धी क्रियाएँ को जब दो या अधिक देशों के बीच किया जाता है तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय कहा जाता है।" अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारक हैं – भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, कानूनी, पारिस्थितिक, पर्यावरण संबंधी और अन्य कारकें। इन कारकों को विस्तारपूर्वक समझने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय को सुचारू रूप से संचालन में सहायता होती है। डैनियल, रैडेनबग और सलिवन (2008) के अनुसार ''अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में वे वाणिज्यिक लेन–देन आते हैं जिसमें निजी और सरकारी एवं इसमें विक्रय, निवेश और परिवहन शामिल होते हैं और ये दो या दो से अधिक देशों के बीच होता है''। कुलोक जूनियर, ओरिन्जर, याइनर और मैकनेट (2009) के अनुसार "अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय वह व्यवसाय है जिसका संचालन विभिन्न देशों के बीच होता है।" इस परिभाषा में केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विदेशी विनिर्माण ही शामिल नहीं होता है बल्कि इसमें बढ़ता हुआ सेवा उद्योग जैसे परिवहन, पर्यटन, विज्ञापन, निर्माण, खुदरा बिक्री, थोक बिक्री, तथा जन संचार शामिल होता है''।

उपर्युक्त परिभाषा के विश्लेषण से यह प्रदर्शित होता है किः

i) सभी वाणिज्यिकि लेन–देन जो दो या अधिक देशों के बीच होता है

ii) यह लेन देन निवेश, उत्पादन, व्यापार प्रबंधन आदि के रूप में दो या अधिक देशों के बीच होता है

iii) दो या दो से अधिक देशों के बीच सेवा और अन्य व्यापार का सहायक क्रियाएँ संचालित होते हैं।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में माल, सेवाएँ, व्यापार का सहायक क्रियाएँ और अन्य व्यवसाय दो या दो से अधिक देशों के बीच होता है।

8.3 अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय का महत्व

अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय में विदेशी व्यापार, सेवाओं का व्यापार, व्यापार में सहायक जैसे परिवहन, बैकिंग, बीमा और दो या दो से अधिक देशों के बीच व्यवसाय करने में लगे अन्य क्रियाएँ शामिल होते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार विभिन्न देशों के आर्थिक संसाधनों की विविधता है। प्रकृति ने सभी देशों को एक ही प्रकार की उत्पादन की सुविधाएँ प्रदान नहीं की हैं। मौसमी परिस्थितियों में विभिन्नताएँ पाई जाती हैं तथा इनमें खनिज संपदाओं एवं पूँजी तथा श्रम की पूर्ति भी अलग–अलग है। इन विभिन्नताओं के कारण प्रत्येक देश कुछ खास–खास वस्तुओं के उत्पादन में ही विशेषीकरण प्राप्त करना अपने लिये लाभकर पाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अतिरेक (surplus) उत्पादन के विनिमय द्वारा इस प्रकार के विशेषीकरण को सरल बना देता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उस स्थिति में होता है, जब क्रेता को खरीदने के लिये विदेशी बाजार में अपने माल को बेचना अधिक लाभकर प्रतीत होता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय बाजार के जरिए विश्व के संसाधनों का अधिक प्रभावी उपयोग संभव हो पाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण होता है।

i) **विश्व के विभिन्न देशों के बारे में जागरूकता:** अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में दो या दो से अधिक देशों के बीच व्यवसाय शामिल होता है। दूसरे देशों के सभी तरह के व्यवसाय संचालन को समझने के लिए व्यवसाय उद्यम पूर्ण प्रयत्न करता है। फर्म शहरी देशों के भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, कानूनी, पारिस्थितिक वातावरण का विश्लेषण करने का प्रयत्न करता है। फर्म दूसरे देशों के मांग, पूर्ति और उपभोग के स्वरूप का मूल्यांकन करता है। इस प्रकार फर्म विदेशी देशों के व्यावसायिक संचालन के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी हासिल करता है।

ii) **वैश्वीकरण के प्रक्रिया में सहायता करता है:** वैश्वीकरण में विश्व के अर्थव्यवस्था का एकीकरण होता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय और इससे संबन्धित क्रियाएँ जैसे तकनीक, प्रबंधन, निवेश, उत्पादन, व्यापार, व्यापार में सहायक क्रियाएँ व्यवसाय के अन्तर्राष्ट्रीय संचालन में सहायता प्रदान करता है। परिवहन और संचार क्रियाविधि में विकास अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के विकास में गति को बढ़ाता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया एक देश को दूसरे देश के निकट लाने में सहायक होता है। इसके फलस्वरूप विश्व अब वैश्विक गाँव हो गया है।

iii) **प्रोद्यौगिकी का प्रसार:** प्रोद्यौगिकी व्यवसाय के क्रियाओं के सभी क्षेत्रों में क्रांति ला दिया है। नई टेक्नोलोजी के विकास में वृहत निवेश की आवश्यकता होती है। नई टेक्नोलोजी के विकास में इतना वृहत निवेश केवल बड़े व्यवसाय उद्यम हीं कर पाएगा। ऐसा उद्यम टेक्नोलोजी के विश्व के अनेक देशों में लाभ प्राप्त करने के लिए बेचना चाहेगा। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय विश्व के विभिन्न भागों में टेक्नोलोजी के प्रसार में सहायता प्रदान कर सकता है।

iv) **प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण:** अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण बनाने में सहायक हो सकता है। जब अन्तर्राष्ट्रीय फर्म नए बाजार में वस्तु को प्रस्तुत करता है तो वह नया संचालन प्रक्रिया, प्रबंधन, टेक्नोलोजी, वस्तु और सेवा के साथ लाता है। इन फर्मों का व्यवसाय प्रथाओं को ध्यान में रखते हुए मेजबान देशों का स्थानीय फर्म भी अपने उत्पाद और सेवाओं तथा संसाधनों में सुधार करना चाहेगा। इस प्रकार फर्मों के बीच एक प्रतिस्पर्धी वातावरण तैयार हो सकता है। प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप उपभोक्ता अच्छा वस्तु या सेवा को प्राप्त कर सकता है।

v) **मैत्री पूर्ण संबंध:** विदेशी व्यापार भिन्न–भिन्न देशों को एक दूसरे से जोड़ने वाला महत्वपूर्ण बल है। यह विभिन्न राष्ट्रों के बीच मैत्री तथा सौहार्दपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देता है। इससे विश्वव्यापी आर्थिक एकीकरण की शुरूआत हो सकती है। इससे भिन्न–भिन्न देशों के बीच सामाजिक–आर्थिक विकास के संदर्भ में राजनीतिक शक्ति

तथा बेहतर सहयोग की सृष्टि हो सकती है। इस तरह व्यापार में वृद्धि से युद्ध की संभावना कम हो सकती है।

vi) **आर्थिक विकास की ऊँची दर**: विदेशी व्यापार से आर्थिक विकास की गति तेज होती है और राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर ऊँची हो जाती है। सच्ची बात यह है कि विदेशी व्यापार को विकास का एक चालक यंत्र या इंजिन कहा गया है। ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान जैसे अनेक विकसित देशों ने अपने निर्मित उत्पादों से ही प्रगति की है। अभी हाल के वर्षों में कोरिया, तायवान, थाईलैंड, सिंगापुर तथा हांगकांग जैसे अनेक विकासशील देशों ने विदेशी व्यापार में अपनी सक्रिय सहभागिता के जरिए अत्यधिक लाभ उठाया है।

vii) **देश के संसाधनों का श्रेष्ठतर उपयोग**: विदेशी व्यापार के माध्यम से देश के संसाधनों का श्रेष्ठतर उपयोग होता है। अनेक स्थितियों में देश के उद्योग अपने माल की बिक्री के लिये विदेशी बाजारों पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिये, भारत के चाय तथा पटसन उद्योग मुख्यतः निर्यात बाजार पर निर्भर करते हैं। जापानी उद्योग अपनी समृद्धि के लिये निर्यात पर निर्भर करता है। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका विदेशी व्यापार पर उतना अधिक निर्भर नहीं करता फिर भी इस देश के कृषि और उद्योग के अनेक उत्पादनों के 25% से भी अधिक निर्यात किया जाता है। अनेक स्थितियों में निर्यात बाजार उत्पादकों को अपने उत्पादन को बढ़ाने की क्षमता प्रदान करता है और इस तरह उन्हें बड़े पैमाने पर किफायतें (Economies of scale) प्राप्त होती हैं। कुछ घरेलू उद्योग पूँजीगत मालों तथा उपकरणों एवं कच्चे माल और कल पुर्जा की पूर्ति के लिये विदेशों पर निर्भर करते हैं।

viii) **कीमतों की स्थिरता**: किसी देश में जब कुछ वस्तुओं की कीमतों में बढ़ने की प्रवृत्ति होती है तो उस वस्तु के आयात को बढ़ा कर कीमतों की वृद्धि को रोका जा सकता है। उसी प्रकार जब वस्तुएं बाजार में अधिक मात्रा में उपलब्ध होती हैं और फलस्वरूप कीमतें गिरने लगती हैं तो उन वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा देकर कीमतों को गिरने से रोका जा सकता है। इस प्रकार सारे विश्व में निर्यात–आयात के जरिए कीमतों में समरूपता लाई जाती है। एकाधिकारों के दुष्कृत्यों को भी नियंत्रित करने में विदेशी व्यापार का उपयोग किया जा सकता है।

ix) **वस्तुओं की अधिक उपलब्धता**: अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के जरिए किसी देश के लिये उन वस्तुओं को प्राप्त करना संभव हो जाता है जो वह स्वयं उत्पादित नहीं कर सकता या अन्य देशों की अपेक्षा उतनी सस्ती विधि से उनका निर्माण नहीं कर सकता। इस प्रकार किसी देश का कल्याण बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि वह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में किस हद तक हिस्सा लेता है। उपभोक्ताओं को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से इसलिये लाभ होता है कि वे अधिकतम सस्ते स्रोतों से अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएँ खरीद सकते हैं। भारत खाद्य तेलों की पूर्ति के लिये बहुत बड़ी मात्रा में विदेशों पर निर्भर करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के उपभोक्ता कॉफी तथा चीनी के लिये विदेशी आयात पर निर्भर करते हैं, जबकि ब्रिटेन के उपभोक्ता अपने खाद्यानों की बड़ी मात्रा तथा चाय की संपूर्ण पूर्ति के लिये विदेशों पर निर्भर करते हैं। विदेशी व्यापार दुनियाँ के विभिन्न देशों को अकाल की स्थिति तथा कृषि उत्पादों की विफलताओं से उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है।

x) **रोजगार के अधिक अवसर**: विदेशी व्यापार से देशीय कृषि तथा उद्योग जनित उत्पादनों में वृद्धि होती है जिसके कारण देश में रोजगार के अवसर बढ़ जाते हैं।

xi) **उत्पादन लागतों में कमी**: पूँजीगत माल तथा कच्चे माल सबसे सस्ते स्रोतों से खरीदे जाते हैं, अतः उत्पादन की कुल लागत कम हो जाती है, जिसके कारण कीमतें कम हो जाती हैं।

xii) **सरकारी आय में योगदान**: अधिकांश सरकारें निर्यातों पर और कभी–कभी आयातों पर भी शुल्क लगाती हैं। इंन करों से राजकोष के लिये पर्याप्त आय की उपलब्धि होती है।

8.4 बहुराष्ट्रीय निगम की परिभाषा

प्रारंभ में ही यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि अधिकांशतः 'बहुराष्ट्रीय निगम' शब्द को पराराष्ट्रीय निगम (TNCs) के पर्याय की तरह प्रयोग किया जाता है। हालांकि, कुछ विद्धानों के अनुसार, MNCs तथा TNCs के मध्य अंतर होता है। उनके अनुसार, MNCs उन देशों की घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वस्तुओं/उत्पाद का उत्पादन करती हैं जिनमें वे कार्य करती हैं। इसके विपरीत, TNCs अन्य देश की बाजार आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वस्तुओं का उत्पादन करती है। MNCs तथा TNCs के मध्य के इस अंतर को नहीं माना जाता है, इसलिए, MNC को TNC भी कहा जा सकता है।

MNCs को एक ऐसे संगठन की तरह परिभाषित किया जाता है जिसकी विभिन्न देशों में उत्पादक सम्पत्तियां हैं तथा जिसकी युक्तियाँ निर्धारण तथा लागूता सभी इकाइयों के लिए समान होती है। अपने मुख्य कार्यालय के समान नियंत्रण के अनुसार ये अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादन करती हैं। विभिन्न देशों में स्थापित इकाईयों में उत्पादन साधन गतिशील होते हैं। इस प्रणाली में अनुसंधान तथा विकास से लेकर उत्पादन तथा सेवा कार्य तक अनेक प्रकार की गतिविधियां सम्मिलित हैं। MNCs or TNCs भी विभिन्न देशों की विद्यमान फर्मों के विलयन अथवा एक देश में विद्यमान फर्मों द्वारा दूसरे देशों की फर्मों के अर्जन के द्वारा स्थापित हो रही है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का शब्दकोष (globalnegotiation.com) बहुराष्ट्रीय निगम को इस प्रकार परिभाषित किया है।

"एक बड़ा व्यावसायिक संगठन है जिसका सहयोगी कंपनियाँ विभिन्न देशों में संचालन करती हैं। इसका मुख्यालय एक देश में होता है तथा अन्य क्रियाक्षेत्र दूसरे देशों में होता है।" इस परिभाषा का विश्लेषण यह प्रदर्शित करता है कि:

i) बहुराष्ट्रीय निगम बड़ा उद्यम होता है।

ii) ये बहुत सारे देशों में संचालन करते हैं।

iii) इनका मुख्य प्रबंधन मुख्यालय से होता है

iv) इनका मुख्यालय एक देश में स्थापित होता है

v) अन्य कार्य क्षेत्र संचालन दूसरे देशों में होता है।

UNCTAD (unctad.org) ने बहुराष्ट्रीय निगम को इस प्रकार परिभाषित किया है। "एक ऐसा उद्यम, जो उद्यम देश और इसके स्वामित्व से निपेक्ष है। इसमें निजी, सार्वजनिक या मिश्रित उद्यम हो सकते हैं। ये उद्यम दो या अधिक देशों में स्थित होते हैं। ये स्वामित्व या

अन्य तरह से जुड़े होते हैं। ये इस प्रकार जुड़े होते हैं कि उनमें से एक या अधिक महत्वपूर्ण ढंग से दूसरे के कार्यकलापों को प्रभावित करते हैं। खासकर ये ज्ञान, संसाधन और उत्तरदायित्व को एक दूसरे से साझा करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषा का विश्लेषण करने से यह प्रदर्शित होता है कि:

i) बहुराष्ट्रीय निगमें एक या अधिक देशों में संचालन करती हैं।

ii) बहुराष्ट्रीय निगमें स्वामित्व द्वारा जुड़े होते हैं।

iii) बहुराष्ट्रीय निगम का एक इकाई दूसरे इकाइयों को महत्वपूर्ण ढ़ंग से प्रभावित करते हैं।

iv) ये ज्ञान, संसाधन और उत्तरदायित्व का दूसरे से साझा करते हैं।

8.5 फर्में बहुराष्ट्रीय क्यों हो जाती हैं?

फर्में अनेक कारणों से बहुरास्ट्रीय हो जाती हैं। इनमें से मुख्य कारण निम्न प्रकार हैं:

बड़े पैमाने की किफायतों का लाभ लेना: जब किसी उद्यम का संसाधन बढता है और स्थिर हो जाता है तब उद्यम नए बाजार को खोजने के लिए प्रयास करता है। उद्यम को एहसास होता है कि विदेशी बाजार में वस्तुओं और सेवाओं का ज्यादा मांग हो सकता है। विदेशी देश के मांग की पूर्ति के लिए उद्यम वृहत मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन करता है। इससे बहुराष्ट्रीय निगम को बड़े पैमाने के किफायतों को प्राप्त करने में सहूलियत होती है।

सुरक्षा के लिए: फर्मों को घरेलू व्यापार चक्र के कारण जोखिमों तथा अनिश्चितताओं का सामना करना पड़ता है, दूसरे देश में संचालन करने से ये घरेलू देश के आर्थिक चक्रों के दुष्प्रभावों को कम कर सकते है।

बढ़ते हुए विश्व बाजार का लाभ उठाने के लिए: वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप बहुराष्ट्रीय निगमें द्वारा विश्व स्तर पर एक समान वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन तथा वितरण किया जाता है। फर्म अपनी वस्तुओं व सेवाओं के लिए ऐसे ही बढ़ते हुए विश्व बाजार का लाभ उठाती है।

बढती विदेशी प्रतिस्पर्धा के प्रति प्रतिक्रिया: बढ़ती विदेशी प्रतिस्पर्धा की प्रतिक्रिया तथा विश्व बाजार अंश की रक्षा के लिये फर्म बहुराष्ट्रीय हो जाती है। प्रतिस्पर्धी की युक्तियों को असफल करने के लिए फर्म प्रतिस्पर्धियों के गृह देश में ही संचालन करती हैं।

लागत कम करने के लिए: MNCs विदेशी ग्राहक के निकट ही अपना संचालन करती है जिससे लागत कम हो सके। ऐसा करने से, वे परिवहन लागत को पूर्णतः कम कर सकती है, उत्पाद के रखरखाव के लिए मध्यस्थ की आवश्यकता को दूर कर सकती है। ग्राहक की आवश्यकताओं की ओर तुरंत ध्यान दे सकती है तथा सटीक प्रतिक्रिया दे सकती है और अंततः स्थानीय संसाधनों का लाभ उठा सकती है।

प्रशुल्क को कम करना: फर्म अपने स्तर पर विदेशी बाजार को सेवाएं प्रदान करके सीमा शुल्क को कम कर सकती है। उदाहरणार्थ यूरोपीय संघ में वस्तुओं का उत्पादन कर रही फर्मे बिना शुल्क दिये ब्लॉक के अन्य देशों में उत्पाद को भेज सकती है।

तकनीकी विशेषज्ञों से लाभान्वित होना: तकनीकी विशेषज्ञों से लाभ लेने के लिए, फर्म विदेशी बाजार में वस्तुओं का उत्पादन कर सकती है। विदेशी बाजार में प्रत्यक्ष रूप से

शामिल होने के कारण कंपनी तकनीक में होने वाले विकास से परिचित हो जाती है। नवीन तकनीक को अपनाने से फर्म प्रतिक्रिया के लिए पूर्ण रूप से तैयार हो जाती है। इस प्रकार, फर्में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से स्वयं को बचाने में सक्षम हो जाती हैं।

8.6 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएं

MNCs की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:

1) सकल विक्रय मापक के आधार पर MNCs सामान्यतः काफी बड़ी होती है। औसतन MNC का विक्रय आगम करोड़ों यू. एस. डॉलर के बराबर होता है, जो कि अक्सर किसी एक, दो या तीन विशाल विकासशील देशों की कुल राष्ट्रीय आय के समान होता है। अस्सी तथा नब्बे के दशक में, कनाडा, जापान तथा यू. के. में छोटी MNC का विकास भी देखा गया है। अब यू.एस.ए. में भी छोटी MNCs हैं।

2) अधिकांश MNCs काफी हद तक विदेशी विक्रय पर निर्भर करती हैं। कुल विक्रय में विदेशी विक्रय के अंश में धीमी वृद्धि हुई है।

3) MNCs बहु–उत्पाद प्रधान होती है जिसके कारण इनकी बाजार क्षमता अधिक होती है।

4) MNCs की मुख्य शक्ति इनकी तकनीक तथा नवनिर्माण पर पकड़ है। ये अनुसंधान एवं विकास में काफी मात्रा में व्यय करती है। अधिकांश TNCs अपने विक्रय का 5–6 प्रतिशत अनुसंधान एवं विकास में व्यय करती है। जो बिलियन डॉलरों में होता है। यही उनकी अत्यधिक बाजार क्षमता का कारण है।

5) MNCs से सम्बन्धक (affiliates) अनेकों महत्वपूर्ण वातावरण सम्बंधी कारकों जैसे प्रतियोगी ग्राहक, वितरक, वित्त संस्थान तथा सरकार के प्रति प्रतिक्रियाशील होते हैं।

6) MNCs के पास संसाधनों का समान समूह होता है जिसमें सम्पत्तियों, पेटेन्ट, ट्रेडमार्क, सूचना तथा मानव संसाधन शामिल है।

7) MNCs के सम्बन्धक (affiliates) एक समान युक्तिपूर्ण दृष्टिकोण के कारण जुड़े होते हैं। हर MNC अपनी युक्तिपूर्ण योजना को इस प्रकार बनाती है कि उसके सम्बन्धकों को सौहार्दपूर्ण तरीके से साथ–साथ लाया जा सके।

विकासशील देशों के बहुराष्ट्रीय निगमें

विकासशील देशों के MNCs की वृद्धि सापेक्षिक रूप से एक नई घटना (phenomenon) है। इनमें से अधिकांश दक्षिण एशिया, दक्षिण पूर्वी एशिया तथा लैटिन अमेरीका से हैं।

इन्हें विकसित देशों की MNC से पृथक करने वाले कुछ कारक हैं:

- विकासशील देशों के MNCs विकासशील देशों में ज्यादा रुचि दिखाती हैं। हांलाकि विकासशील देश कभी–कभी विकसित देशों में भी सहायक तथा संयुक्त उद्यम इकाइयां स्थापित करते हैं। इनमें से अधिकांश निर्यात सहयोगी क्रियाओं में स्थापित है।
- कुछ मामलों में इनकी प्रबंध अवधारणाएं तथा तकनीक विकासशील देशों के लिये अधिक उपयुक्त होती है क्योंकि इनमें विकासशील देशों से सम्बन्धित मूल पृष्ठभूमि व अभिन्यास होता है।
- यह भी माना जाता है कि कभी–कभी विकासशील देशों की MNCs विकसित देशों के लिये प्रतिस्पर्धा सृजित करती है।

- विकासशील देशों की MNCs पैतृक / सहायक लेन–देनों का कम अन्तःकरण (internalize) करती हैं।

8.7 बहुराष्ट्रीय निगमों के वर्तमान प्रवृत्ति

बहुराष्ट्रीय निगम के संचालन में वृद्धि हो रही है। वैश्वीकरण का प्रक्रिया बहुराष्ट्रीय निगमों के विकास को बढ़ाया है। यदि आप विश्व के 100 बड़े MNEs के विदेशी सम्पत्तियाँ, विदेशी विक्रय और विदेशी रोजगार का विश्लेषण करें तो आप विश्व के MNEs के वृहत परिमाण में संचालन के बारे में समझ पाएगें।

तालिका 8.1: विश्व की 100 बड़े MNEs

(बिलियन डॉलर, कर्मचारियों की संख्या हजार में)

सम्पत्तियाँ, विक्रय और रोजगार वर्ष 2016	
सम्पत्तियाँ	
विदेशी	8268
घरेलू	4985
कुल	13,252
कुल सम्पत्ति में विदेशी सम्पत्ति का प्रतिशत	62
विक्रय	
विदेशी	4764
घरेलू	2700
कुल	7464
कुल विक्रय में विदेशी विक्रय का प्रतिशत	64
रोजगार	
विदेशी	9330
घरेलू	6993
कुल	16,323
कुल रोजगार में विदेशी रोजगार का प्रतिशत	57

स्रोत : विश्व निवेश रिपोर्ट, 2017

सारणी 8.1 को देखिए जिसमें विश्व के 100 बड़े गैर वित्तीय MNEs को दिखाया गया है। जैसा कि आप जानते हैं कि बहुराष्ट्रीय निगम दो या दो से अधिक देशों में संचालन करते हैं। वे सम्पत्तियाँ, विक्रय और रोजगार का बहुत सारे देशों में सृजन करते हैं। सारणी 8.1 दर्शाता है कि वर्ष 2016 में विश्व के 100 बड़े MNEs का कुल सम्पत्ति में विदेशी सम्पत्ति का प्रतिशत 62 है। आप इस सारणी में यह भी पाएगें कि वर्ष 2016 में विश्व के 100 बड़े MNEs का कुल विक्रय में विदेशी विक्रय का प्रतिशत 64 है। उसी प्रकार वर्ष 2016 में विश्व के 100 बड़े MNEs का कुल रोजगार में विदेशी रोजगार का प्रतिशत 57 है।

सारणी 8.2 को देखिए जिसमें विकासशील और बदलते हुए अर्थ व्यवस्था (transitional economies) से 100 बड़े MNEs को दर्शाया गया है। विकासशील और बदलते हुए अर्थव्यवस्था से आने वाले MNEs में भी वृद्धि हो रहा है। ये MNEs अपना संचालन पूरे विश्व में बढ़ा रहे हैं। सारणी 8.2 यह दर्शाता है कि विकासशील और बदलते हुए अर्थव्यवस्था से आने वाले 100 बड़े MNEs का 2015 वर्ष में विदेशी सम्पत्ति का कुल सम्पत्ति

में प्रतिशत 29 है। आप यह भी देखेगें कि वर्ष 2015 में विकासशील और बदलते हुए अर्थव्यवस्था से आने वाले 100 बड़े MNEs के कुल विक्रय में विदेशी विक्रय का प्रतिशत 47 है। उसी प्रकार वर्ष 2015 में विकासशील और बदलती हुई अर्थव्यवस्था से आने वाले 100 बड़े MNEs के कुल रोजगार में विदेशी रोजगार का प्रतिशत 33 है।

तालिका 8.2: विकासशील एवं बदलती अर्थव्यवस्थाओं में से 100 बड़े MNES

(बिलियन डॉलर, कर्मचारियों की संख्या हजार में)

सम्पत्तियाँ, विक्रय और रोजगार वर्ष 2015	
सम्पत्तियाँ	
विदेशी	1717
घरेलू	4249
कुल	5966
कुल सम्पत्ति में विदेशी सम्पत्ति का प्रतिशत	29
विक्रय	
विदेशी	1769
घरेलू	2011
कुल	3780
कुल विक्रय में विदेशी विक्रय का प्रतिशत	47
रोजगार	
विदेशी	3954
घरेलू	8090
कुल	12044
कुल रोजगार में विदेशी रोजगार का प्रतिशत	33

स्रोत : विश्व निवेश रिपोर्ट, 2017

बोध प्रश्न 1

1) अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के तीन विशेषताओं को लिखिए।

.....

.....

.....

.....

3) MNCs की तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) बताइए कि निम्नलिखित में से कौन–सा कथन **सही** है या **गलत** है।

i) फर्म विदेशी प्रतियोगिता बढ़ने के कारण बहुराष्ट्रीय हो जाती है।

ii) फर्म अपने स्तर पर विदेशी बाज़ार को सेवाएं प्रदान करके प्रशुल्क के दायरे से बाहर नहीं आ सकती है।

iii) MNCs की मुख्य शक्ति उसकी तकनीक तथा नवनिर्माण पर नियन्त्रण है।

iv) विकासशील देशों के MNCs विकासशील देशों के MNCs के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करते हैं।

v) कंपनियां सस्ते श्रम का लाभ प्राप्त करने के लिए अपने उत्पादन केंद्रों को सीमा के बाहर स्थापित करती है।

8.8 बहुराष्ट्रीय निगमों के मुद्दे तथा विवाद

इस तथ्य से अधिकांशतः सभी सहमत हैं कि विश्व अर्थव्यवस्था में MNCs तकनीकी विशेषज्ञ व प्रवर्तक होने के साथ–साथ संसाधनों के कुशल वितरक भी हैं फिर भी इससे सम्बन्धित अनेक विवादास्पद मुददे हैं। ये निम्न प्रकार हैं :

i) MNCs के तथा मेजबान देशों के हितों में प्रायः विशेषकर विकासशील देशों में पारस्परिक मतभेद होता है। MNCs ऐसे उत्पादों का उत्पादन करता है जो मेजबान देशों के लिए बहुत अत्यन्त आवश्यक नहीं होते और इस प्रकार संसाधनों की पूर्ति आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन से विमुख हो जाते हैं।

ii) MNCs सामान्यतः उच्च लाभ केंद्रित क्षेत्रों पर प्रभावी रहती है। ये इन क्षेत्रों के लाभ को बिना स्थानीय उद्यमों के विस्तार के एकाधिकृत करते हैं। ये ब्रांड नेम, ट्रेड मार्क पैकेजिंग आदि से सृजित बाजार शक्ति के फलस्वरूप ऐसा करने में सफल रहते हैं।

iii) MNCs मेजबान देश को अपनी नवीन तकनीक हस्तान्तरित करने में अत्यन्त अरुची दिखाती है तथा इस प्रकार ये विकासशील देशों को तकनीक के लिए अपने ऊपर निर्भर बनाती है। MNCs अपने समस्त महत्वपूर्ण अनुसंधान व विकास गृह देश में करती है।

iv) बाजार अंश की रक्षा के लिए ये प्रतिबन्धित व्यापार प्रथा को अपनाते हैं। आयात का विशिष्ट स्रोतों से बद्ध होना, तकनीकी हस्तान्तरण में शर्ते लगाना, मूल्य निर्धारण, प्रतिबन्ध ब्रांड के नाम व ट्रेडमार्क का प्रतिबन्धित उपयोग शामिल हैं।

v) स्थानांतरण मूल्य के द्वारा, MNCs मेजबान देशों की सरकारों से करमुक्त हो जाती हैं जिससे वे संसाधनों को उनसे दूर कर देती है। MNCs मेजबान देशों के साझेदारी को भी कानूनन लाभ से वंचित कर देती है।

vi) MNCs मेजबान देश के व्यक्तियों की उच्च पदों पर नियुक्ती नहीं करती हैं। बढ़ते आयात तथा अधिक लाभांशों, अधिकार शुल्क, तकनीक तथा प्रबंधन शुल्क के प्रत्यावर्तन के कारण मेजबान विकासशील देशों के भुगतान शेष में समस्याएं उत्पन्न करती है।

vii) MNCs आवश्यक पीछे की ओर तथा आगे के ओर लिंक नहीं बनाती है। इस असफलता के कारण मेजबान देशों में अक्सर गैर औद्योगिकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

viii) MNCs आवश्यक रूप से अपने संचालनों में अत्यन्त कुशल नहीं होती है। अनेक मामलों में, MNCs को भारी घाटों का सामना करना पड़ता है।

ix) MNCs विलयन तथा अर्जन के द्वारा अपनी प्रभावी स्थिति को सुदृढ़ बनाकर प्रतियोगिता को रोकती है।

x) MNCs गृह सरकार तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की नीतियों को प्रभावित करने में अत्यन्त सक्षम होती है। इस क्षमता के कारण वे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों को अपने अनुरूप बना लेती है चाहे इससे अनेक देशों को विशेषकर विकासशील देशों के हितों को नुकसान ही क्यों न पहुँचे।

गृह देश के संदर्भ में

सामान्यतः गृह देश अपनी MNCs को आगे बढ़ाते हैं, लेकिन उनके संचालनों के कुछ क्षेत्रों की गृह देश भी आलोचना करता है।

1) MNCs अपने गृह देश से संसाधनों को हटा लेती है।

2) MNCs उन देशों में अपने उत्पादन केंद्र स्थापित करती है जहां श्रम सस्ता हो और इस प्रकार ये अपने गृह देश में बेरोजगारी उत्पन्न करती है।

3) MNCs अपने उद्योगों को अक्सर ऐसे देश में स्थापित करते हैं जहां पर्यावरणीय कानून शिथिल हैं, पर्यावरणीय दशाओं पर भी दुष्प्रभाव डालती है। इसके परिणामस्वरूप : (क) वैश्विक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न होती है तथा (ख) उन वस्तुओं का आयात होता है, जो पर्यावरण के लिये हानिकारक हैं।

MNCs के समर्थक यह तर्क देते हैं कि ये आलोचनाएं अतिरंजित हैं तथा पर्याप्त साक्ष्यों पर आधारित नहीं हैं। अधिकांशतः ज्यादातर वे मलेशिया, थाइलैंड तथा कुछ लैटिन अमेरीकी देशों में MNCs के कारण हुए आर्थिक विकास का प्रमाण देते हैं। सन 1980 तथा 1990 के समाप्ति काल को सरकार तथा MNCs के मध्य सहयोग का काल कहा जाता है।

8.9 बहुराष्ट्रीय निगमों के भारतीय परिप्रेक्ष्य

1990 तक भारत ने प्रतिबंधकारी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति का पालन किया है। तब तक भी अनेक MNCs भारत में या तो अल्प अंशधारिता के माध्यम से भारतीय उपक्रमों के सहयोग के द्वारा अथवा स्वयं के सहायकों के द्वारा कार्यरत थी। इसमें से अधिकांश 60–70% बाजार अंश के साथ कुछ उपभोक्ता उद्योगों में प्रभावपूर्ण (dominant) स्थिति में थी। जैसा कि अनेक MNCs ने पाया कि भारत का घरेलू बाजार काफी विशाल है अतः, वे भारतीय नीतियों की रूपरेखा में ही कार्य करते थे, यद्यपि इन नीतियों को अत्यन्त प्रतिबंधकारी माना जाता था।

1991 में भारत सरकार द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति को उदारवादी बनाने के पश्चात भारत MNCs के एक महत्वपूर्ण बाजार के रूप में सामने आया जिस पर गम्भीर रूप से विचार करने की आवश्यकता थी। विशाल MNCs जैसे फिलिप्स, यूनियन कार्बाइड, यूनीलीवर, ग्लैक्सो, बूट्स, वेलकम, कोकाकोला, पेप्सी, आई बी एम, ब्रुक बाण्ड, आई टी सी भारत में कार्यरत हैं और इसमें से अनेक उपभोक्ता उद्योगों के क्षेत्र में विविधीकरण (diversification) कर रही हैं। अंर्तराष्ट्रीय बैंकें भी भारतीय अर्थव्यवस्था में रुचि दिखा रहे हैं।

हालांकि MNCs का मुक्त प्रवेश अभी भी भारतीय उद्योग व राजनीतिक क्षेत्रों में चिन्तन का विषय है। भारतीय अर्थव्यवस्था को भय है कि एफ डी आई का अत्यधिक उदारीकरण घरेलू उपक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। इसलिए इनमें से अनेक अपने लिए लेभल पलेइंग फिल्ड खोज रहे हैं। कुछ राजनीतिक पार्टियां भारतीय अर्थव्यवस्था पर MNCs के प्रभुत्व के विषय में सचेत हैं। यद्यपि इस वाद–विवाद का कोई अन्त नही है फिर भी यह निश्कर्ष निकाला जा सकता है कि MNCs भारत में बढ़ती हुई दर से स्थापित होगी।

लेकिन उनका प्राथमिक उद्देश्य प्रगतिशील घरेलू बाजार को ढूंढ़ना होगा। परन्तु कोई यह विचार कर सकता है कि इसका प्राथमिक उद्देश्य बढ़ते घरेलू बाजार को भुनाना है।

विदेश में कार्यरत भारतीय कंपनियां

उदारीकरण के पिछले डेढ़ दशकों से भी अधिक के दौरान, अनेक भारतीय कंपनियां बहुराष्ट्रीय संचालनों के क्षेत्र में प्रवेश कर रही हैं। ओ एन जी सी. विदेश, रिलायंस, विप्रो, टाटा, रैनबैक्सी, इंफोसिस, महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा, भारत फोर्ज, एमटेक ऑटो, व बी पी एल कुछ ऐसी विख्यात भारतीय कंपनियां हैं जिनके सम्बन्ध में यह माना जा सकता है कि वे MNCs का पद प्राप्त कर चुकी हैं।

बोध प्रश्न 2

1) विश्व के MNEs और विकासशील तथा उभरते हुए अर्थव्यवस्था के MNEs में अंतर बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) i) विश्व के 100 बड़े MNEs का कुल सम्पत्ति में विदेशी सम्पत्ति का प्रतिशत वर्ष 2016 में 62 प्रतिशत है।

ii) विकासशील और उभरते हुए अर्थव्यवस्था के 100 बड़े MNEs का कुल विक्रय में विदेशी विक्रय का वर्ष 2015 में 47 प्रतिशत है।

iii) MNCs मेजबान देश में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए अनिच्छुक नहीं है।

iv) MNCs आवश्यक आगे की ओर और पीछे की ओर जोड़ने के लिए अनिच्छुक है।

v) MNCs बहुत सारे देशों में जहाँ पर पर्यावरण विनियमन ढ़ीला है वहाँ उद्योग स्थापित करके पर्यावरण के स्थिति का उल्लंघन करते है।

8.10 सारांश

सामान्य शब्दों में, व्यवसाय तथा उससे संबंधित क्रियाओं का देश से बाहर संचालित किया जाना, अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय कहलाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यवसाय के महत्व में शामिल हैः

i) विश्व के विभिन्न देशों के बारे में जागरूकता, ii) वैश्वीकरण के प्रक्रिया में सहायता करता है, iii) प्रौद्योगिकी का प्रसार, iv) प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण, v) मैत्रीपूर्ण संबंध, vi) देश के संसाधनों का श्रेष्ठतर उपयोग, vii) आर्थिक विकास की उँची दर, viii) कीमतों की स्थिरता, ix) वस्तुओं की अधिक उपलब्धता, x) रोजगार के अधिक अवसर, xi) उत्पादन लागतों में कमी, xii) सरकारी आय में योगदान।

बहुराष्ट्रीय निगम को एक ऐसे संगठन की तरह परिभाषित किया जाता है जिसकी विभिन्न देशों में उत्पादक सम्पत्तियाँ है तथा जिसकी युक्तियाँ निर्धारण तथा लागूता सभी इकाइयों के लिए समान होती है। अपने मुख्य कार्यालय के समान नियंत्रण के अनुसार ये अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादन करती है। और विभिन्न देशों में स्थापित इकाईयों में उत्पादन साधन गतिशील होते हैं।

फर्में अनेक कारणों से बहुराष्ट्रीय हो जाती है। इनमें से मुख्य कारण हैः

i) वृहत पैमाने का लाभ प्राप्त करने के लिए, ii) संरक्षित करना, iii) बढ़ते हुए विश्व बाजार का लाभ प्राप्त करने के लिए, iv) बढ़ती विदेशी प्रतिस्पर्धा, v) लागत कम करने के लिए, vi) प्रशुल्क को कम करना, vii) तकनीकी विशेषज्ञों से लाभान्वित होना।

बहुराष्ट्रीय निगम की प्रमुख विशेष्ताएँ हैंः i) बड़ा आकार, ii) विदेशी विक्रय, iii) बहु–उत्पाद iv) तकनीक तथा नव निर्माण पर पकड़, v) प्रतिक्रियाशील, vi) अधिक संसाधन, vi) समान युक्तिपूर्ण योजना।

विश्व के 100 बड़े गैर–वित्तीय MNEs और विकासशील और बढ़ते हुए अर्थव्यवस्था से 100 बड़े MNEs का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि बहुराष्ट्रीय निगम सम्पत्तियाँ, विक्रय और रोजगार का बहुत सारे देशों में सृजन करते हैं।

बहुराष्ट्रीय निगम से सम्बन्धित कुछ मुद्दे और विवाद हैं जैसे उच्च लाभ केन्द्रित होना, नवीन तकनीक हस्तान्तरित नहीं करना, प्रतिबन्धित व्यापार प्रथा अपनाना, अपनी प्रभावी स्थिति को सुदृढ़ बनाना, सरकार के नीतियों को प्रभावित करना आदि।

बहुराष्ट्रीय निगम भारत में रूचि दिखा रहें हैं और भारतीय बहुराष्ट्रीय निगम भी विश्व बाजार में अपनी रूचि दिखा रहे हैं।

8.11 शब्दावली

गृह देश (Home Country): मूल कम्पनी का देश।

मेजबान देश (Host Country); एक स्वतंत्र देश जहां MNCs अपनी सहायक कम्पनी या संबद्धों को स्थापित करती हैं।

अन्तः फर्म व्यापार (Intra Firm Trade); एक एम एन सी के संबंधितों, सहायकों व शाखाओं के मध्य व्यापार।

बाजार विफलता (Market Failure): जब बाजार प्रतिक्रिया निगम की आशाओं के अनुरूप नही होती।

बाजार शक्ति (Market Power): MNC की बाजार को प्रभावित करने की क्षमता अथवा शक्ति।

स्थानांतरण मूल्य (Transfer Pricing): अंतः फर्म व्यापार में प्रयुक्त वे मूल्य जिनके बाजार मूल्य से भिन्न होने की आशा की जाती है।

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 4) i) सही ii) गलत iii) सही iv) गलत v) सही

2. 2) i) गलत ii) सही iii) गलत iv) सही v) सही

8.13 स्वपरख प्रश्न

1) MNCs क्या है ? फर्में बहुराष्ट्रीय क्यों हो जाती हैं?

2) MNCs की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिये।

3) विश्व तथा विकासशील तथा बदलते हुए अर्थव्यवस्था वाले देशों में MNCs के हाल ही के प्रवृत्तियों की व्याख्या कीजिए।

4) बहुराष्ट्रीय निगम के संबंध में विभिन्न मुद्दों तथा विवादों की विवेचना कीजिए।

5) MNCs के संचालनों से मेजबान देश तथा गृह देश में होने वाले विभिन्न लाभ तथा हानियों को स्पष्ट कीजिए।

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY